१४

संस्कृतवाक्यप्रबोधः

संस्कृतवाक्यप्रबोधः

भूमिका

मैंने इस ''**संस्कृतवाक्यप्रबोध**'' पुस्तक को बनाना अवश्य इसलिये समझा है कि शिक्षा को पढ़ के कुछ-कुछ संस्कृत भाषण का आना विद्यार्थियों को उत्साह का कारण है। जब वे व्याकरण के सन्धिविषयादि पुस्तकों को पढ़ लेंगे, तब तो उनको स्वतः ही संस्कृत बोलने का बोध हो जायगा, परन्तु यह जो संस्कृत बोलने का अभ्यास प्रथम किया जाता है, वह भी आगे-आगे संस्कृत पढ़ने में बहुत सहाय करेगा। जो कोई व्याकरणादि ग्रन्थ पढ़े विना भी संस्कृत बोलने में उत्साह करते हैं, वे भी इसको पढ़के व्यवहारसम्बन्धी संस्कृत भाषा को बोल और दूसरे का सुनके भी कुछ-कुछ समझ सकेंगे। जब बाल्यावस्था से संस्कृत बोलने का अभ्यास होगा तो उसको आगे-आगे संस्कृत बोलने का अभ्यास अधिक अधिक ही होता जायगा। और जब बालक भी आपस में संस्कृत भाषण करेंगे तो उनको देख कर जवान और वृद्ध मनुष्य भी संस्कृत बोलने में रुचि अवश्य करेंगे। जहां कहीं संस्कृत के नहीं जानने वाले मनुष्यों के सामने दूसरे को अपना गुप्त अभिप्राय समझाना चाहें तो वहां भी संस्कृत भाषण काम आता है।

जब इसके पढ़ाने वाले विद्यार्थियों को ग्रन्थस्थ वाक्यों को पढ़ावें उस समय दूसरे वैसे ही नवीन वाक्य बना कर सुनाते जावें, जिससे पढ़ने वालों की बुद्धि बाहर के वाक्यों में भी फैल जाय। और पढ़ने वाले भी एक वाक्य को पढ़के उसके सदृश अन्य वाक्यों की रचना भी करें कि जिससे बहुत शीघ्र बोध हो जाय, परन्तु वाक्य के बोलने में स्पष्ट अक्षर, शुद्धोच्चारण, सार्थकता, देश और काल वस्तु के अनुकूल जो पद जहां बोलना उचित हो वहीं बोलना और दूसरे के वाक्यों पर ध्यान देकर सुनके समझना। प्रसन्नमुख, धैर्य, निरभिमान और गम्भीरतादि गुणों को धारण करके क्रोध, चपलता, अभिमान और तुच्छतादि दोषों से दूर रहकर अपने वा किसी के सत्य वाक्य का खण्डन और अपने अथवा किसी के असत्य का मण्डन

कभी न करें और सर्वदा सत्य का ग्रहण करते रहें।

इस ग्रन्थ में संस्कृत वाक्य प्रथम और उसके सामने भाषार्थ इसलिये लिखा है कि पढ़ने वालों को सुगमता हो और संस्कृत की भाषा और भाषा का संस्कृत भी यथायोग्य बना सकें।

फाल्गुण शुक्ला ११ **दयानन्द सरस्वती**
[१९३६ वि०]
काशी

अथ विषयसूचीपत्रम्

क्रम संख्या	नाम प्रकरण	पृष्ठ संख्या
१	गुरुशिष्यवार्त्तालापप्रकरणम्	२४७
२	नामनिवासस्थानप्रकरणम्	२४८
३	गृहाश्रमप्रकरणम्	२५०
४	भोजनप्रकरणम्	२५१
५	देशदेशान्तरप्रकरणम्	२५२
६	सभाप्रकरणम्	२५४
७	आर्यावर्त्तचक्रवर्त्तिराजप्रकरणम्	२५५
८	राजप्रजालक्षण—राजनीत्यनीतिप्रकरणम्	२५५
९	शत्रुवशप्रकरणम्	२५६
१०	वैश्यव्यवहारप्रकरणम्	२५७
११	कुसीदग्रहणप्रकरणम्	२५७
१२	नौकाविमानादिचालनप्रकरणम्	२५७
१३	क्रयविक्रयप्रकरणम्	२५८
१४	गमनागमनप्रकरणम् [१]	२५९
१५	क्षेत्रवपनप्रकरणम्	२५९
१६	शस्यच्छेदनप्रकरणम्	२६०
१७	गवादिदोहनपरिमाणप्रकरणम्	२६०
१८	क्रयविक्रयार्घप्रकरणम्	२६१
१९	कुसीदप्रकरणम्	२६१
२०	उत्तमर्णाधमर्णप्रकरणम्	२६१
२१	राजप्रजासम्बन्धप्रकरणम्	२६१
२२	साक्षिप्रकरणम्	२६२
२३	सेव्यसेवकप्रकरणम्	२६४
२४	मिश्रितप्रकरणम् [१]	२६५
२५	गमनागमनप्रकरणम् [२]	२६५
२६	रोगप्रकरणम्	२६६
२७	मिश्रितप्रकरणम् [२]	२६६
२८	विवाहस्त्रीपुरुषालापप्रकरणम्	२६८
२९	स्त्रीश्वश्रूश्वशुरादि-सेव्यसेवकप्रकरणम्	२६८
३०	ननन्दृभ्रातृजायासंवादप्रकरणम्	२६९
३१	सायंकालकृत्यप्रकरणम्	२७०
३२	शरीराऽवयवप्रकरणम्	२७१
३३	राजसभाप्रकरणम्	२७४
३४	ग्राम्यपशुप्रकरणम्	२७६
३५	ग्रामस्थपक्षिप्रकरणम्	२७८
३६	वन्यपशुप्रकरणम्	२७८
३७	वनस्थपक्षिप्रकरणम्	२७९
३८	तिर्यग्जन्तुप्रकरणम्	२८०
३९	जलजन्तुप्रकरणम्	२८१
४०	वृक्षवनस्पतिप्रकरणम्	२८१
४१	औषधिप्रकरणम्	२८२
४२	आत्मीयप्रकरणम्	२८३
४३	सामन्तप्रकरणम्	२८४
४४	कारुप्रकरणम्	२८४
४५	अयस्कारप्रकरणम्	२८५
४६	सुवर्णकारप्रकरणम्	२८५
४७	कुलालप्रकरणम्	२८६
४८	तन्तुवायप्रकरणम्	२८६
४९	सूचीकारप्रकरणम्	२८६
५०	मिश्रितप्रकरणम् [३]	२८६
५१	लेख्यलेखकप्रकरणम्	२९१
५२	मन्तव्यामन्तव्यप्रकरणम्	२९३
	परिशिष्ट [१]	२९५
	परिशिष्ट [२]	२९८
	परिशिष्ट [३]	३२७

ओ३म्

परमगुरवे परमात्मने नमः

अथ संस्कृतवाक्यप्रबोधः

१. गुरुशिष्यवार्तालापप्रकरणम्

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१ भोः शिष्य! उत्तिष्ठ, प्रातःकालो जातः।	हे शिष्य! उठ सवेरा हुआ।
२ उत्तिष्ठामि।	उठता हूँ।
३ अन्ये सर्वे विद्यार्थिन उत्थिता न वा?	और भी सब विद्यार्थी उठे वा नहीं?
४ अधुना तु नोत्थिताः खलु।	अभी तो वे नहीं उठे हैं।
५ तानपि सर्वानुत्थापय।	उन सबको भी उठा दे।
६ सर्व उत्थापिताः।	सब उठा दिये।
७ सम्प्रत्यस्माभिः किं कर्त्तव्यम्?	इस समय हमको क्या करना चाहिए?
८ शौचादिकं कृत्वा सन्ध्यामुपासीध्वम्।	शरीरशुद्धि करके ईश्वर ज्ञान के लिये सन्ध्योपासन करो।
९ आवश्यकं कृत्वा सन्ध्योपासिताऽतः परं किं करणीयम्?	आवश्यक कर्म करके सन्ध्योपासन कर लिया, इसके आगे हम क्या करें?
१० अग्निहोत्रं विधाय पठत।	अग्निहोत्र करके पढ़ो।
११ पूर्वं किं पठनीयम्?	पहिले क्या पढ़ना चाहिये?
१२ वर्णोच्चारणशिक्षामधीध्वम्।	वर्णोच्चारणरीति को सीखो।
१३ अग्रे किमध्येतव्यम्।	आगे क्या पढ़ना चाहिये?
१४ किञ्चित्संस्कृतोक्तिबोधः क्रियताम्।	कुछ संस्कृत बोलने का ज्ञान करो।
१५ पुनः किमभ्यसनीयम्?	फिर किसका अभ्यास करें?
१६ यथायोग्यव्यवहारानुष्ठानाय प्रयतध्वम्।	यथोचित व्यवहार करने के लिये प्रयत्न करो।
१७ कुतोऽनुचितव्यवहारकर्तुर्विद्यैव न जायते।	क्योंकि उलटे व्यवहार करनेहारे को विद्या ही नहीं होती।
१८ को विद्वान् भवितुमर्हति?	कौन मनुष्य विद्वान् होने के योग्य

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
	होता है ?
१९ यः सदाचारी प्राज्ञः पुरुषार्थी भवेत्।	जो सत्याचरणशील, बुद्धिमान्, पुरुषार्थी होता है।
२० कीदृशादाचार्यादधीत्य पण्डितो भवितुं शक्यते ?	कैसे आचार्य से पढ़ के पण्डित हो सकता है ?
२१ अनूचानतः।	पूर्णविद्या वाले से।
२२ अथ किमध्यापयिष्यते भवता ?	आप इसके अनन्तर हमको क्या पढ़ावेंगे ?
२३ अष्टाध्यायीमहाभाष्यम्।	अष्टाध्यायी और महाभाष्य को।
२४ किमनेन पठितेन भविष्यति ?	इसके पढ़ने से क्या होगा ?
२५ शब्दार्थसम्बन्धविज्ञानम्।	शब्द, अर्थ और [उनके]सम्बन्धों का यथार्थ बोध।
२६ पुनः क्रमेण किं किमध्येतव्यम् ?	फिर क्रम से क्या क्या पढ़ना चाहिये ?
२७ शिक्षाकल्पनिघण्टुनिरुक्तछन्दो-ज्योतिषाणि वेदानामङ्गानि।	शिक्षा, कल्प, निघण्टु-निरुक्त, छन्द और ज्योतिष वेदों के अङ्ग।
२८ मीमांसावैशेषिकन्याययोगसांख्य-वेदान्तान्युपाङ्गान्यायुर्धनुर्गान्धर्वार्थो-पवेदानैतरेयशतपथसामगोपथ-ब्राह्मणान्यधीत्य ऋग्यजुस्सामाऽथर्ववेदान् पठन्तु।	मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त उपाङ्ग, आयुर्वेद, धुनर्वेद गान्धर्ववेद और अर्थवेद उपवेद, ऐतेरय शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों को पढ़ के ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को पढ़ो।
२९ एतत्सर्वं विदित्वा किं कार्य्यम् ?	ये सब जान के फिर क्या करना चाहिये ?
३० धर्मजिज्ञासाऽनुष्ठाने एतेषामेवाऽध्यापनं च।	धर्म जानने की इच्छा, इसी का आचरण और इन्हीं को सर्वदा पढ़ाया करो।

२. नामनिवासस्थानप्रकरणम्

१ तव किं नामास्ति ?	तेरा क्या नाम है ?
२ देवदत्तः।	देवदत्त।
३ क्वाऽभिजनो युवयोर्वर्त्तते ?	तुम दोनों की जन्मभूमि कहां है ?

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
४ **कुरुक्षेत्रे।**	कुरुक्षेत्र देश में।
५ **युष्माकं जन्मदेशः को विद्यते?**	तुम्हारा जन्मदेश कौन सा है?
६ **पञ्चालाः।**	पञ्चाल[१]।
७ **भवन्तः कुत्रत्याः?**	आप कहां के हो?
८ **वयं दाक्षिणात्याः स्मः।**	हम दक्षिणी हैं।
९ **तत्र का पूर्वः?**	वहां आपके निवास का कौन नगर है?
१० **मुम्बापुरी।**	मुम्बई।
११ **इमे क्व निवसन्ति?**	ये लोग कहां रहते हैं?
१२ **नेपाले।**	नेपाल में।
१३ **अयं किमधीते?**	यह क्या पढ़ता है?
१४ **व्याकरणम्।**	व्याकरण को।
१५ **त्वया किमधीतम्?**	तूने क्या पढ़ा है?
१६ **न्यायशास्त्रम्।**	न्यायशास्त्र।
१७ **भवता किं पठितमस्ति?**[२]	आपने क्या पढ़ा है?[२]
१८ **पूर्वमीमांसाशास्त्रम्।**[२]	पूर्व मीमांसा शास्त्र।[२]
१९ **अयं भवदीयश्छात्रः किं प्रचर्च्चयति?**	यह आपका विद्यार्थी क्या पढ़ता है?
२० **ऋग्वेदम्।**	ऋग्वेद को।
२१ **त्वं कुत्र गच्छसि?**	तू कहां जाता है?
२२ **पाठाय व्रजामि।**	पढ़ने के लिये जाता हूँ।
२३ **कस्मादधीषे?**	किससे पढ़ता है?
२४ **यज्ञदत्तादध्यापकात्।**	यज्ञदत्त अध्यापक से।
२५ **इमे कुतोऽभ्यस्यन्ति?**	ये किससे पढ़ते हैं?
२६ **विष्णुमित्रात्।**	विष्णुमित्र से।
२७ **तवाध्ययने कियन्तः संवत्सरा व्यतीताः?**	तुझको पढ़ते हुए कितने वर्ष बीते?

१. मूल में पंचाल का भाषानुवाद पंजाब लिखा है। वस्तुतः उत्तरप्रदेश के बरेली मण्डल से फर्रुखाबाद तक का क्षेत्र उत्तरदक्षिण पंचाल कहाता है।

२. यह वाक्य मूल में है, प्रथम संस्करण में नहीं है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
२८ पञ्च।	पांच।
२९ भवान् कतिवार्षिकः ?	आप कितने वर्ष के हुए ?
३० त्रयोदशवार्षिकः।	तेरह वर्ष का।
३१ त्वया पठनारम्भः कदा कृतः ?	तूने पढ़ने का आरम्भ कब किया था ?
३२ यदाहमष्टवार्षिकोऽभूवम्।	जब मैं आठ वर्ष का था।
३३ तव मातापितरौ जीवतो न वा ?	तेरे माता पिता जीते हैं वा नहीं ?
३४ जीवतः।	जीते हैं।
३५ तव कति भ्रातरो भगिन्यश्च ?	तेरे कितने भाई और बहिन हैं ?
३६ त्रयो भ्रातरश्चैका भगिन्यस्ति।	तीन भाई और एक बहिन है।
३७ त्वं ज्येष्ठस्ते सा वा ?	तू ज्येष्ठ वा तेरे भाई अथवा बहिन ?
३८ अहमेवाग्रजोऽस्मि।	मैं ही सबसे पहिले जन्मा हूँ।
३९ तव पितरौ विद्वांसौ न वा ?	तेरे माता-पिता विद्या पढ़े हैं वा नहीं ?
४० महाविद्वांसौ स्तः।	बड़े विद्वान् हैं।
४१ तर्हि त्वया पित्रोः सकाशात्कुतो न विद्या गृहीता ?	तो माता-पिता से तूने विद्या ग्रहण क्यों न की ?
४२ अष्टमवर्षपर्य्यन्तं कृता।	आठ वर्ष पर्यन्त की थी।
४३ अत ऊर्ध्वं कुतो न कृता ?	इससे आगे क्यों न की ?
४४ मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेदेति शास्त्रविधेः।	माता-पिता से आठवें वर्ष पर्य्यन्त, इसके आगे आचार्य से पढ़ने का शास्त्र में विधान है, इससे।
४५ अन्यच्च गृहे कार्यबाहुल्येन निरन्तरमध्ययनमेव न जायतेऽतः।	और भी घर में बहुत काम होने से निरन्तर पढ़ना ही नहीं हो सकता इसलिये भी।
४६ अतः परं कियद्वर्षपर्यन्तमध्येष्यसे ?	इसके आगे कितने वर्ष पर्यन्त पढ़ेगा ?
४७ पञ्चत्रिंशद्वर्षाणि।	पैंतीस वर्ष तक।

३. गृहाश्रमप्रकरणम्

१ पुनस्ते का चिकीर्षास्ति ?	फिर तुझको क्या करने की इच्छा है ?
२ गृहाश्रमस्य।	गृहस्थाश्रम की।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
३ **किं च भोः पूर्णविद्यस्य जितेन्द्रियस्य परोपकारकरणाय संन्यासाश्रमग्रहणं शास्त्रोक्तमस्ति तत् किं न करिष्यसि?**	क्यों! जिसको पूर्ण विद्या और जो जितेंद्रिय है उसको परोपकार करने के लिये संन्यासाश्रम का ग्रहण करना शास्त्रोक्त है, क्या इसको न करोगे?
४ **किं गृहाश्रमे परोपकारो न भवति?**	क्या गृहाश्रम में परोपकार नहीं हो सकता?
५ **यादृशः संन्यासाश्रमिणा कर्तुं शक्यते न तादृशो गृहाश्रमिणाऽनेककार्यैः प्रतिबन्धकत्वेन भ्रमणाशक्यत्वात्।**	जैसा संन्यासाश्रमी से मनुष्यों का उपकार हो सकता है वैसा गृहाश्रमी से नहीं हो सकता, क्योंकि इसको अनेक कामों की रुकावट से सर्वत्र भ्रमण ही नहीं हो सकता।

४. भोजनप्रकरणम्

१ **नित्यः स्वाध्यायो जातो भोजनसमय आगतो गन्तव्यम्।**	[1]आज का पढ़ना-पढ़ाना हो गया, भोजन समय आया, चलना चाहिये।
२ **तव पाकशालायां प्रत्यहं भोजनाय किं किं पच्यते?**	तुम्हारी पाकशाला में प्रतिदिन भोजन के लिये क्या क्या पकाया जाता है?
३ **शाकसूपौदश्वित्कौदनरोटिकादयः।**	शाक, दाल, कढ़ी, भात, रोटी, चटनी आदि।
४ **किं वः पायसादिमधुरेषु रुचिर्नास्ति?**	क्या आप लोगों की खीर आदि मीठे भोजन में रुचि नहीं है?
५ **अस्ति खलु परन्तवेतानि कदाचित् कदाचिद् भवन्ति।**	है, परन्तु ये चीजें कभी कभी बनती हैं।
६ **कदाचिच्छष्कुलीश्रीखण्डादयोऽपि भवन्ति न वा?**	कभी पूरी, कचोरी, श्रीखण्डादि भी होते हैं वा नहीं?
७ **भवन्ति, परन्तु यथर्त्तुयोगम्।**	होते हैं, परन्तु जैसा ऋतु होता है वैसे ही भोजन बनते हैं।
८ **सत्यमस्माकमपि भोजनादिकमेवमेव निष्पद्यते।**	ठीक है, हमारे भी भोजन ऐसे ही बनते हैं।
९ **त्वं भोजनं करिष्यसि न वा?**	तू भोजन करेगा वा नहीं?

१. मूल में 'आज का' ही पाठ है, अतः हमने 'नित्य का' न रखकर 'आज का' ही रखना उपयुक्त समझा है। सम्पादक

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१० अद्य न करोम्यजीर्णतास्ति।	आज नहीं करता अजीर्णता है।
११ अधिकभोजनस्येदमेव फलम्।	अधिक भोजन का यही फल है।
१२ बुद्धिमता तु यावज्जीर्यते तावदेव भुज्यते।	बुद्धिमान् पुरुष तो जितना पचे, उतना ही खाता है।
१३ अतिस्वल्पे भुक्ते शरीबलं ह्रसत्यधिके चातः सर्वदा मिताहारी भवेत्।	बहुत कम और अत्यधिक भोजन करने से शरीर का बल घट जाता है, इससे सब दिन मिताहारी होवे।
१४ योऽन्यथाहारव्यवहारौ करोति स कथं न दुःखी जायेत?	जो उलट-पलट आहार और व्यवहार करता है, वह क्यों न दुःखी होवे?
१५ येन शरीराच्छ्रमो न क्रियते स नैव शरीरसुखमाप्नोति।	जो शरीर से परिश्रम नहीं करता वह शरीर के सुख को प्राप्त नहीं होता।
१६ येनात्मना पुरुषार्थो न विधीयते तस्यात्मनो बलमपि न जायते।	जो आत्मा से पुरुषार्थ नहीं करता उसका आत्मा का बल भी नहीं बढ़ता।
१७ तस्मात्सर्वैर्मनुष्यैर्यथाशक्ति सत्क्रिया नित्यं साधनीया।	इससे सब मनुष्यों को उचित है कि शरीर और आत्मा से उत्तम कर्मों की साधना नित्य करें।
१८ भो देवदत्त! त्वामहं निमन्त्रये।	हे देवदत्त! तुझ को मैं भोजन के लिये निमन्त्रित करता हूँ।
१९ मन्येऽहं कदा खल्वागच्छेयम्?	मैं मानता हूँ, परन्तु किस समय आऊँ?
२० श्वो द्वितीयप्रहरमध्ये आगन्तासि।	कल दोपहर दिन चढ़े आना।
२१ आगच्छ भो आसनमध्यास्व त्वया ममोपरि महती कृपा कृता।	आप आइये, आसन पर बैठिये, तुमने मुझ पर बड़ी कृपा की।

५. देशदेशान्तरप्रकरणम्

१	भवानेतान् जानातीमे महाविद्वांसः सन्ति।	आप इनको जानते हैं? ये बड़े विद्वान् हैं।
२	किन्नामान एते कुत्रत्याः खलु?	इनके क्या क्या नाम और ये कहां-कहां के रहने वाले हैं?
३	अयं यज्ञदत्तः काशीनिवासी।	यह यज्ञदत्त काशी में निवास करता है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
४ विष्णुमित्रोऽयं कुरुक्षेत्रवास्तव्यः।	यह विष्णुमित्र कुरुक्षेत्र में बसता है।
५ सोमदत्तोऽयं माथुरः।	यह सोमदत्त मथुरा में रहता है।
६ अयं सुशर्मा पर्वतीयः।	यह सुशर्मा पर्वत में रहता है।
७ अयमाश्वलायनो दाक्षिणात्योऽस्ति।	यह आश्वलायन दक्षिणी है।
८ अयं जयदेवः पाश्चात्यो वर्तते।	यह जयदेव पश्चिमदेशवासी है।
९ अयं कुमारभट्टो बाङ्गो विद्यते।	यह कुमारभट्ट बंगाली है।
१०. अयं कापिलेयः पाताले निवसति।	यह कापिलेय पाताल अर्थात् अमेरिका में रहता है।
११ अयं चित्रभानुर्हरिवर्षस्थः।	यह चित्रभानु हिमालय से उत्तर हरिवर्ष अर्थात् यूरोप में रहता है।
१२ इमौ सुकामसुभद्रौ चीननिकायौ।	ये सुकाम और सुभद्र चीन के वासी हैं।
१३ अयं सुमित्रो गन्धारस्थायी।	यह सुमित्र गन्धार अर्थात् काबुल कन्धार का रहनेवाला है।
१४ अयं सुभटो लङ्काजः।	यह सुभट लंका में जन्मा है।
१५ इमे पंच सुवीरातिबलसुकर्मसुधर्म-शतधन्वानो मत्स्याः।	सुवीर, अतिबल, सुकर्मा, सुधर्मा और शतधन्वा ये पांच मारवाड़ के रहनेवाले हैं।
१६ एते मयाऽऽमन्त्रिताः स्वस्वस्थानादागताः।	ये सब मेरे बुलाने पर अपने अपने घर से आये हैं।
१७ इमे शिवकृष्णगोपालमाधवसुचन्द्र-प्रक्रमभूदेवचित्रसेनमहारथा नवात्रत्याः।	शिव, कृष्ण, गोपाल, माधव, सुचन्द्र, प्रक्रम, भूदेव, चित्रसेन और महारथ ये नव इस मध्य देश के रहनेवाले हैं।
१८ अहोभाग्यं मेऽस्ति त्वत्कृपयैतेषामपि समागमो जातः।	मेरा बड़ा भाग्य है कि आप की कृपा से इन सत्पुरुषों का भी मिलाप हुआ।
१९ अहमपि सभवतः सर्वानेतान्निमन्त्रयितुमिच्छामि।	मैं भी आपके समेत इन सब का निमन्त्रण करना चाहता हूँ।
२० अस्माभिर्भवन्निमन्त्रणमूरीकृतम्।	हमने आपका निमन्त्रण स्वीकार किया।
२१ सत्कृतोऽस्मि, परन्तु भवद्भोजनार्थं किं किं पक्तव्यम्? यद्यद्भोक्तुमिच्छास्ति तत्तदनुज्ञापयन्तु।	आपके निमन्त्रण मानने से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु [आपके भोजन के लिये क्या-क्या पकाया जाय?] जिस जिस पदार्थ

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
	के जीमने की इच्छा हो, उस-उस की मुझको आज्ञा कीजिये।
२२ भवान् देशकालज्ञः कथनेन किम्? यथायोग्यं पक्तव्यम्।	आप देशकाल को जानते ही हैं, कहने से क्या। मूल?
२३ सत्यमेवमेव करिष्यामि।	ठीक है, ऐसा ही करूंगा।
२४ उत्तिष्ठत भोजनसमय आगतः पाकः सिद्धो वर्तते।	उठिये, भोजन-समय हुआ, पाक तैयार हुआ है।
२५ भो भृत्य! पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं जलं देहि।	हे नौकर! इनको पग, हाथ, मुख धोने के लिये जल दे।
२६ इदमानीतं जलं गृह्यताम्।	यह लाया जल लीजिये।
२७ भोः पाचकाः! सर्वान् पदार्थान् क्रमेण परिवेविष्ट।	हे पाचक लोगो! सब पदार्थों को क्रम से परोसो।
२८ भुञ्जीध्वम्।	भोजन कीजिये।
२९ भोजनस्य सर्वे पदार्थाः श्रेष्ठा जाता न वा?	भोजन के सब पदार्थ अच्छे हुए हैं वा नहीं?
३० अत्युत्तमाः सम्पन्नाः किं कथनीयम्।	क्या कहना है, बड़े उत्तम हुए हैं।
३१ भवता किञ्चित् पायसं ग्राह्यं वा यस्येच्छाऽस्ति।	आप थोड़ी सी खीर लीजिये वा जिसकी इच्छा हो।
३२ प्रभूतं भुक्तं तृप्ताः स्मः।	बहुत रुचि से भोजन किया, तृप्त हो गये।
३३ तर्ह्युत्तिष्ठत।	तो उठिये।
३४ जलं देहि।	जल दे।
३५ गृह्यताम्।	लीजिये।
३६ ताम्बूलादीन्यानीयन्ताम्।	पान बीड़े, इलायची आदि लाओ।
३७ इमानि सन्ति गृह्णन्तु।	ये हैं, लीजिये।

६. सभाप्रकरणम्।

१ इदानीं सभायां काचिच्चर्च्चा विधेया।	अब सभा में कुछ वार्तालाप करना चाहिये।
२ धर्म्मः किं लक्षणोऽस्तीति पृच्छामि?	मैं पूछता हूँ कि धर्म्म का क्या लक्षण है?

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
३	[यो] वेदप्रतिपाद्यो न्याय्यः पक्षपातरहितो वर्त्तते। यश्च परोपकार सत्याचरणलक्षणो धर्मोऽस्तीत्युत्तरम्।	जो वेदोक्त, न्यायानुकूल, पक्षपातरहित है। और जो पराया उपकार तथा सत्याचरण युक्त है उसी को धर्म जानना चाहिये।
४	ईश्वरः कोऽस्तीति ब्रूहि?	ईश्वर किसको कहते हैं, आप कहिये।
५	यस्सच्चिदानन्दस्वरूपः सत्यगुणकर्मस्वभावः।	जो सत् चित् आनन्दस्वरूप और जिसके गुण, कर्म, स्वभाव सत्य ही हैं, वह ईश्वर है।
६	मनुष्यैः परस्परं कथं कथं वर्त्तितव्यम्?	मनुष्यों को एक दूसरे के साथ कैसे-कैसे वर्त्तना चाहिये?
७	धर्मसुशीलतापरोपकारैः सह यथायोग्यम्।	धर्म, श्रेष्ठ स्वभाव और परोपकार के साथ जिनसे जैसा व्यवहार करना योग्य हो वैसा ही सबको वर्त्तना चाहिये।

७. आर्य्यावर्त्तचक्रवर्त्तिराजप्रकरणम्

१	अस्मिन्नार्यावर्त्ते पुरा के के चक्रवर्त्तिराजा अभूवन्?	इस आर्य्यावर्त्त देश में कौन-कौन चक्रवर्ती राजा हुए हैं?
२	स्वायम्भुवाद्या युधिष्ठिरपर्यन्ताः।	स्वायम्भुव से लेके युधिष्ठिर पर्य्यन्त।
३	चक्रवर्त्तिशब्दस्य कः पदार्थः?	चक्रवर्ती शब्द का क्या अर्थ है?
४	य एकस्मिन् भूगोले स्वकीयामाज्ञां प्रवर्त्तयितुं समर्थाः।	जो एक भूगोल भर में अपनी राजनीतिरूप आज्ञा को चलाने में समर्थ हो।
५	ते कीदृशीमाज्ञां प्राचीचरन्?	वे कैसी आज्ञा का प्रचार करते थे?
६	यया धार्मिकाणां पालनं दुष्टानां ताडनं च भवेत्।	जिससे धर्मिकों का पालन और दुष्टों को दण्ड होवे वैसी आज्ञा को।

८. राजप्रजालक्षणराजनीत्यनीतिप्रकरणम्

१	राजा को भवितुं शक्नोति?	राजा कौन हो सकता है?
२	यो धार्मिकाणां सभाया अधिपतित्वे योग्यो भवेत्।	जो धर्मात्माओं की सभा का स्वामी होने को योग्य होवे।
३	यदि प्रजां पीडयित्वा स्वार्थं साधयेत् स राजा भवितुमर्होऽस्ति न वा?	जो प्रजा को दुःख देकर अपना मतलब साधे, वह राजा हो सकता है वा नहीं?

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
४	**नहि नहि नहि, स तु दस्युः खलु।**	नहीं नहीं नहीं, वह तो डाकू ही है।
५	**या राजद्रोहिणी सा तु न प्रजा किन्तु स्तेनेन तुल्या मन्तव्या।**	जो राजव्यवहार में विरोध करे, वह प्रजा तो नहीं, किन्तु उसको चोर के समान जानना चाहिये।
६	**कथंभूता जनाः प्रजा भवितुमर्हाः?**	कैसे मनुष्य प्रजा होने को योग्य हैं?
७	**ये धार्मिकाः सततं राजप्रियकारिणः।**	जो निरन्तर धर्मात्मा और राजसम्बन्ध में प्रेम रक्खें।
८	**राजपुरुषैरप्येवमेव प्रजाप्रियकारिभिः सदा भवितव्यम्।**	राजसम्बन्धी पुरुषों को भी वैसे ही प्रजा के हित करने में सदा रहना चाहिये।

९. शत्रुवशकरणप्रकरणम्

१	**एते शत्रुभिः सह कथं वर्तेरन्?**	ये लोग शत्रु के साथ कैसे वर्तें?
२	**राजप्रजोत्तमपुरुषैरयः सामदानभेद-दण्डैर्वशमानेयाः।**	राजा और प्रजा के श्रेष्ठ पुरुषों को योग्य है कि अरियों को (साम) मिलाप, (दान) कुछ देना, (भेद) आपस में उनकी फूट कराके और (दण्ड) उनको दण्ड करके वश में करने चाहियें।
३	**सदा स्वराज्यप्रजासेनाकोषधर्मविद्या-सुशिक्षा वर्द्धनीयाः।**	सब दिन अपना राज्य, प्रजा, सेना, कोष, धर्म्म, विद्या और श्रेष्ठशिक्षा बढ़ाते रहना चाहिये।
४	**यथाऽधर्माविद्यादुष्टशिक्षादस्युचोरादयो न वर्द्धेरँस्तथा सततमनुष्ठेयम्।**	जिस प्रकार से अधर्म, अविद्या, बुरी शिक्षा, डाकू और चोर आदि न बढ़ें, वैसा निरन्तर पुरुषार्थ करना चाहिये।
५	**धार्मिकैः सह कदाचिन्नैव योद्धव्यम्।**	धर्मात्माओं के साथ कभी भी लड़ाई न करनी चाहिये।
६	**निर्जिता अपि दुष्टा विनयेन सत्कर्त्तव्याः।**	पराजित शत्रुओं का भी विनय के साथ मान्य करना चाहिये।
७	**राजप्रजे अन्तःप्राणवत् परस्परं सम्पोष्ये नैव कर्षणीये।**	राजा और प्रजा एक दूसरे की पुष्टि करके सदा सुखी रहें। किन्तु एक दूसरे को निर्बल न करें।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
८ कर्षिते क्षयरोगवदुभे विनश्यतः।	एक दूसरे को निर्बल करने से दमा (क्षय) रोग के समान दोनों निर्बल होकर नष्ट हो जाते हैं।
९ सदा ब्रह्मचर्यविद्याभ्यां शरीरात्म-बलमेधनीयम्।	सब काल में ब्रह्मचर्य और विद्या से शरीर और आत्मा का बल बढ़ाते रहना चाहिये।
१० यथादेशकालं पुरुषार्थेन यथावत् कर्माणि कृत्वा सर्वथा सुखयितव्यम्।	देश काल के अनुकूल उद्यम से ठीक-ठीक कर्म करके सब प्रकार सुखी रहना चाहिये।

१०. वैश्यव्यवहारप्रकरणम्

१ वैश्याः कथं वर्त्तेरन्?	बनिये लोग कैसे वर्त्तें?
२ सर्वा देशभाषा विज्ञाय पशुपालनक्रयविक्रयादि-व्यापारकुसीदवृत्तिकृषिकर्माणि धर्मेण कुर्युः।	वैश्य लोग सब देशभाषा और हिसाब को ठीक-ठीक जानकर पशुओं की रक्षा, लेन-देन आदि व्यवहार, ब्याजवृत्ति और खेती आदि कर्म धर्म से किया करें।

११. कुसीदग्रहणप्रकरणम्

१ यद्येकवारं दद्याद् गृह्णीयाच्च तर्हि कुसीदवृद्धेर्द्वैगुण्ये धर्मोऽधिकेऽधर्म इति वेदितव्यम्।	जो एक वार दें लें तो ब्याजवृद्धि सहित मूलधन द्विगुणा तक लेके आसामी को अनृण करने में धर्म और अधिक लेने में अधर्म होता है, ऐसा जानना चाहिये।
२ प्रतिमासं प्रतिवर्षं वा यदि कुसीदं गृह्णीयाद्यदा समूलं द्विगुणं धन-मागच्छेत्तदा मूलमपि त्याज्यम्।	जो महीने-महीने अथवा वर्ष वर्ष में ब्याज लेता जाय तो भी जब दूना धन आ जाय फिर आगे आसामी से कुछ भी न लेना चाहिये।

१२. नौकाविमानादिचालनप्रकरणम्

१ त्वं नौकाश्चालयसि न वा?	तू नावें चलाता है वा नहीं?
२ चालयामि।	चलाता हूँ।
३ नदीषु वा समुद्रे?	नदियों अथवा समुद्र में?
४ उभयत्र चलन्ति।	दोनों में चलती हैं।

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
५	**कस्यां दिशि कस्मिन्देशे गच्छन्ति?**	किस दिशा और किस देश में जाती हैं?
६	**सर्वासु दिक्षु पातालदेशपर्य्यन्तम्।**	सब दिशाओं में पातालदेश अर्थात् अमेरिका देश पर्य्यन्त।
७	**ताः कीदृश्यः सन्ति केन चलन्ति?**	वे नौका कैसी हैं और किससे चलती हैं?
८	**कैवर्त्तवाय्वग्निजलकलावाष्पादिभिः।**	मल्लाह, वायु, अग्नि, जल, कला यन्त्र और भाफ [भाप] आदि से।
९	**याः पुरुषाश्चालयन्ति ता ह्रस्वा या महत्यस्ता वाय्वादिभिस्ता अश्वतरी-श्यामकर्णाश्वायुक्ताख्याः सन्ति।**	जिनको मनुष्य चलाते हैं वे छोटी छोटी नौका और जो बड़ी होती हैं वे वायु आदि से चलाई जाती हैं, उनके अश्वतरी और श्यामकर्णाश्वा आदि नाम हैं।
१०	**विमानादिभिरपि सर्वत्र गच्छाम आगच्छामश्च।**	और विमान आदि से भी सर्वत्र जाया-आया करते हैं।

१३. क्रयविक्रयप्रकरणम्

१	**अस्य किं मूल्यम्?**	इसका क्या मूल्य है?
२	**पञ्च रूप्याणि।**	पांच रुपये।
३	**गृहाणेदं वस्त्रं देहि।**	लीजिये पांच रुपये, यह वस्त्र दीजिये।
४	**अद्य श्वो घृतस्य कोऽर्घः?**	आजकल घी का क्या भाव है?
५	**मुद्रैकया सापदप्रस्थं विक्रीणते।**	एक रुपये का सवा सेर बेचते हैं।
६	**गुडस्य को भावः?**	गुड़ का क्या भाव है?
७	**द्वाभ्यामानाभ्यामेकसेटकमात्रं ददति।**	दो आने का एक सेर भर देते हैं।
८	**भो आपणं गच्छ, एला आनय।**	तू बाजार को जा, इलायची ले आ।
९	**आनीताः, गृहाण।**	लाई, लीजिए।
१०	**कस्य हट्टे दधिदुग्धे अच्छे प्राप्नुतः?**	किसकी दुकान पर अच्छे दूध और दही मिलते हैं?
११	**धनपालस्य।**	धनपाल की।
१२	**स सत्येनैव क्रयविक्रयौ करोति।**	वह सत्य से ही लेन-देन करता है।
१३	**श्रीपतिर्वणिक्कीदृशोऽस्ति?**	श्रीपति बनियां कैसा है?
१४	**स मिथ्याकारी।**	वह झूठा है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१५ **अस्मिन्संवत्सरे कियान् लाभो व्ययश्च जातः।**	इस वर्ष में कितना लाभ और खर्च हुआ?
१६ **पञ्च लक्षाणि लाभो लक्षद्वयस्य व्ययश्च।**	पांच लाख रुपये लाभ और दो लाख खर्च हुए।
१७ **मम खल्वस्मिन् वर्षे लक्षद्वयस्य हानिर्जाता।**	मेरी तो इस वर्ष में दो लाख की हानि हो गई।
१८ **कस्तूरी कस्मादानीयते?**	कस्तूरी कहां से लाते हो?
१९ **नेपालात्।**	नेपाल से।
२० **द्विशालाः कुत आगच्छन्ति?**	दुशाले कहां से लाते हैं?
२१ **कश्मीरात्।**	कश्मीर से।

१४. गमनागमनप्रकरणम् [१]

१ **कुत्र गच्छसि?**	कहां जाता है?
२ **पाटलिपुत्रकम्।**	पटना को।
३ **कदाऽऽगमिष्यसि?**	कब आओगे?
४ **एकमासे।**	एक महीने में।
५ **स क्व गतः?**	वह कहाँ गया?
६ **शाकमानयनाय।**	शाक लाने के लिये।

१५. क्षेत्रवपनप्रकरणम्

१ **क्षेत्राणि कर्षन्तु।**	खेत जोतो।
२ **बीजान्युप्तानि न वा?**	बीज बोये वा नहीं?
३ **उप्तानि।**	बो दिये।
४ **अस्मिन् क्षेत्रे किमुप्तम्?**	इस खेत में क्या बोया है?
५ **व्रीहयः।**[१]	धान[२]।
६ **एतस्मिन्?**	इसमें?
७ **गोधूमाः।**	गेहूँ।

---

१. मूलपाण्डुलिपि और प्रथमसंस्करण में तण्डुलाः पाठ है।
२. मूलपाण्डुलिपि और प्रथमसंस्करण में चावल पाठ है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
८ अस्मिन् किं वपन्ति ?	इस खेत में क्या बोते हैं ?
९ तिलमुद्गमाषाढकीः।	तिल, मूंग, उदड़ और अरहर।
१० एतस्मिन् किमुप्यते ?	इसमें क्या बोया जाता है ?
११ यवाः।[१]	जौ।

१६. शस्यच्छेदनप्रकरणम्

१ सम्प्रति केदाराः पक्वाः।	इस समय खेत पक गये हैं।
२ यदि पक्वाः स्युस्तर्हि लुनन्तु।	जो खेत पक गये हों तो काटो।
३ इदानीं कृषीवला अन्योऽन्यं केदारान् व्यतिलुनन्ति।	खेती करने वाले आपस में एक दूसरे का पारापारी खेत काटते हैं।
४ ऐषमः धान्यानि प्रभूतानि जातानि।	इस साल में धान्य बहुत हुए हैं।
५ अत एवैकस्या मुद्राया गोधूमाः खारी-प्रमिता अन्यानि तण्डुलादीन्यपि किञ्चिदधिकन्यूनानि लभन्ते।	इसी से एक रुपये के गेहूँ एक मन और चावल आदि अन्न भी मन से कुछ अधिक न्यून मिलते हैं।

१७. गवादिदोहनपरिमाणप्रकरणम्

१ इयं गौर्दुग्धं ददाति न वा ?	यह गाय दूध देती है वा नहीं ?
२ ददाति।	देती है।
३ इयं महिषी कियद्दुग्धं ददाति ?	यह भैंस कितना दूध देती है ?
४ दशप्रस्थम्।	दश सेर।
५ तव अजादयस्सन्ति न वा ?	तेरे भेड़ बकरी हैं वा नहीं ?
६ सन्ति।	हैं।
७ प्रतिदिनं ते कियद् दुग्धं जायते ?	हर रोज तेरे कितना दूध होता है ?
८ पञ्च खार्यः।	पांच मन।
९ नित्यं किंपरिमाणे घृतनवनीते भवतः ?	रोज कितना घी और मक्खन होता है ?
१० सार्द्धद्वादशप्रस्थे।	साढ़े बारह सेर।
११ प्रत्यहं कियद् भुज्यते कियच्च विक्रीयते ?	हर रोज कितना खाया जाता और कितना बिकता है ?

---

१. मूलपाण्डुलिपि और प्रथम संस्करण में 'यवान्' पाठ है।

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१२	**सार्धद्विप्रस्थं भुज्यते दशप्रस्थं च विक्रीयते।**	अढ़ाई सेर खाया जाता और दश सेर बिकता है।

१८. क्रयविक्रयार्घप्रकरणम्

१	**एतद् रूप्यैकेन कियन् मिलति?**	ये घी और मक्खन एक रुपये का कितना मिलता है?
२	**प्रस्थत्रयं प्रस्थत्रयम्।**	तीन-तीन सेर।
३	**तैलस्य कियच्छुल्कम्?**	तैल का क्या भाव है?
४	**मुद्राचतुर्थांशेन सेटकद्वयं प्राप्यते।**	चार आने का दो सेर मिलता है।
५	**अस्मिन्नगरे कति हट्टास्सन्ति?**	इस नगर में कितनी दुकानें हैं?
६	**पञ्चसहस्राणि।**	पाँच हजार।

१९. कुसीदप्रकरणम्

१	**शतं मुद्रा देहि।**	सौ रुपये दीजिये।
२	**ददामि, परन्तु कियत् कुसीदं दास्यसि?**	देता हूँ, परन्तु कितना ब्याज देगा?
३	**प्रतिमासं मुद्रार्द्धम्।**	हर महीने में आठ आने।

२०. उत्तमर्णाधमर्णप्रकरणम्

१	**भो अधमर्ण! यावद्धनं त्वया पूर्वं गृहीतं तदिदानीं दीयताम्।**	हे करजदार! जो धन तूने पहिले लिया था, वह इसी घड़ी दे।
२	**मम साम्प्रतं तु दातुं सामर्थ्यं नास्ति।**	मेरा इस समय तो देने का सामर्थ्य नहीं है।
३	**कदा दास्यसि?**	कब देगा?
४	**मासद्वयाऽनन्तरम्।**	दो महीने के पश्चात्।
५	**यद्येतावति समये न दास्यसि चेत्तर्हि राजनियमान्निग्राह्य ग्रहीष्यामि।**	जो तू इतने समय में न देगा तो राजप्रबन्ध से पकड़ा के लूंगा।
६	**यद्येवं कुर्य्यां तर्हि तथैव ग्रहीतव्यम्**	जो ऐसा करूं तो वैसे ही लेना।

२१. राजप्रजासम्बन्धप्रकरणम्

१	**भो राजन्! मह्यमयमृणं न ददाति।**	हे राजन्! मेरा यह करज नहीं देता।
२	**यदा तेन गृहीतं तदानीन्तनः कश्चित्**	जब उसने लिया था उस समय का कोई

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
	साक्षी वर्त्तते न वा?	गवाह है वा नहीं?
३	**वर्तते।**	है।
४	**तर्ह्यानीयताम्।**	तो लाओ।
५	**आनीतोऽयमस्ति।**	लाया, यह है।

२२. साक्षिप्रकरणम्

१	**भोः साक्षिन्! त्वमत्र किमपि जानासि न वा?**	हे गवाह! तू इस विषय में कुछ जानता है वा नहीं?
२	**जानामि।**	जानता हूँ।
३	**यादृशं जानासि तादृशं सत्यं वद।**	जैसा जानता है वैसा सच कह।
४	**सत्यं वदामि।**	सच कहता हूँ।
५	**अस्मादनेन मत्समक्षे सहस्रं मुद्रा गृहीताः।**	इससे इसने मेरे सामने हजार रुपये लिये थे।
६	**ओ भृत्य! तं शीघ्रमानय।**	ओ नौकर! उसको जल्दी ले आ।
७	**आनयामि।**	लाता हूँ।
८	**गच्छ राजसभायां राज्ञा त्वमाहूतोऽसि।**	चल राजसभा में राजा ने तुझको बुलाया है।
९	**चलामि।**	चलता हूँ।
१०	**भो राजन्! उपस्थितः सः।**	हे राजन्! वह यहां आया है।
११	**त्वयाऽस्यर्णं कुतो न दीयते?**	तू इसका ऋण क्यों नहीं देता?
१२	**अस्मिन् समये तु मम सामर्थ्यं नास्ति षण्मासानन्तरं दास्यामि।**	इस समय तो मेरा सामर्थ्य नहीं है, परन्तु छः महीनों के पीछे दूंगा।
१३	**पुनर्विलम्बन्तु न करिष्यसि?**	फिर देर तो न करेगा?
१४	**महाराज! कदापि न करिष्यामि।**	महाराज! कभी न करूंगा।
१५	**अच्छगच्छ धनपाल! यदि सप्तमे मास्ययं न दास्यति तर्ह्येनं निगृह्य दापयिष्यामि।**	अच्छा जाओ धनपाल! जो यह सातवें महीने में न देगा तो इसको पकड़ के दिला दूंगा।
१६	**अनेन मम शतं मुद्रा गृहीता अधुना न ददाति।**	इसने मेरे सौ रुपैये लिये, अब नहीं देता।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१७ किं च भो! यदयं वदति तत् सत्यं न वा?	क्योंजी! जो यह कहता है वह सच है वा नहीं?
१८ मिथ्यैवाऽस्ति।	झूठ ही है।
१९ अहं तु जानाम्यपि नाऽस्य मुद्रा मया कदा स्वीकृताः।	मैं तो जानता भी नहीं कि इसके रुपये मैंने कब लिये थे।
२० उभयोस्साक्षिणः सन्ति न वा?	दोनों के गवाह लोग हैं वा नहीं हैं?
२१ सन्ति।	हैं।
२२ कुत्र वर्त्तन्ते?	कहां हैं?
२३ इम उपतिष्ठन्ते।	ये खड़े हैं।
२४ अनेन युष्माकं समक्षे शतं मुद्रा दत्ता न वा?	इसने तुम्हारे सामने सौ रुपये दिये वा नहीं?
२५ दत्तास्तु खलु।	निश्चित दिये तो हैं।
२६ अनेन शतं मुद्रा गृहीता न वा?	इसने सौ रुपये लिये वा नहीं?
२७ वयं न जानीमः।	हम नहीं जानते।
२८ प्राड्विवाकेनोक्तम्—	वकील ने कहा—
२९ ''अयमस्य च साक्षिणः सर्वे मिथ्यावादिनः सन्ति।	''यह और इसके गवाह लोग सब झूठ बोलने वाले हैं।
३० कुत इदमेतेषां परस्परं विरुद्धं वचोऽस्ति।	क्योंकि यह इन लोगों का वचन पूर्वापर विरुद्ध है।
३१ यतस्त्वया मिथ्याप्रलपितमतएव तवैकसंवत्सरपर्य्यन्तं कारागृहे बन्धः क्रियते।	जिससे तूने झूठ बोला इसी कारण तेरा एक वर्ष तक कैदीखाने में बन्ध किया जाता है।
३२ अयमुत्तमर्णस्त्वदीयान् पदार्थान् गृहीत्वा विक्रीय वा स्वर्णं ग्रहीष्यति।	यह सेठ तेरे पदार्थों को लेकर अथवा बेच के अपने ऋण को ले लेगा।
३३ अयं मदीयानि पञ्चशतानि रूप्याणि धृत्वा न ददाति।	यह मेरे पांच सौ रुपये लेकर नहीं देता।
३४ कुतो न ददासि?	क्यों नहीं देता?
३५ मया नैव गृहीतानि, कथं दद्याम्?	मैंने लिये ही नहीं, कैसे दूं?

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
३६ अयम्मम लेखोऽस्ति पश्यैतम्[१]।	यह मेरा लिखा है, देखो इसे।
३७ आनय।	लाओ।
३८ गृह्यताम्।	लीजिये।
३९ अयं लेखो मिथ्या प्रतिभाति।	यह लिखा हुआ झूठ मालूम पड़ता है।
४० तस्मात् त्वं षण्मासान् कारागृहे वस तवेमे साक्षिणश्च द्वौ द्वौ मासौ च तत्रैव गच्छेयुः।	इससे तू छः महीने कैदखाने में रह और ये तेरे गवाह भी दो दो महीने के लिये वहीं जायें।

२३. सेव्यसेवकप्रकरणम्।

१ भो मङ्गलदास! सेवार्थं कैङ्कर्यं करिष्यसि?	हे मंगलदास! सेवा के लिये नौकरी करेगा?
२ करिष्यामि।	करूंगा।
३ किं प्रतिमासं मासिकं ग्रहीतुमिच्छसि?	प्रति महीने कितना मासिक लेने को चाहता है?
४ पञ्च रूप्याणि।	पांच रुपये।
५ मयैतावद्दास्यते परन्तु यदि यथायोग्या परिचर्य्या विधेया।	मैं इतना दूंगा, परन्तु जो तू ठीक-ठीक सेवा करेगा।
६ यदाहं भवन्तं सेविष्ये तदा भवानपि प्रसन्न एव भविष्यति।	जब मैं आपकी सेवा करूंगा तब आप भी प्रसन्न होंगे।
७ मार्जनं कुरु।[२]	झाडू दे।[२]
८ दन्तधावनमानय।	दातून ले आ।
९ स्नानार्थं जलमानय।	नहाने के लिये जल ला।
१० उपवस्त्रं देहि।	अंगोछा दे।
११ आसनं स्थापय।	आसन रख।
१२ पाकं कुरु।	रसोई कर।
१३ हे सूद! त्वयाऽन्नं व्यञ्जनं च सुष्ठु सम्पादनीयम्।	हे रसोइये! तू अन्न और शाक आदि उत्तम बना।

---

१. यहाँ ''पश्य तम्'' के स्थान पर 'पश्यैतम्' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।
२. यह वाक्य मूल पुस्तक में है, प्रथम संस्करण में नहीं है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१४ अद्य किं किं कुर्याम्?	आज क्या क्या करूं?
१५ पायसमोदकौदनसूपरोटिकाशाकान्युपव्यञ्जनानि चापि।	खीर, लड्डू, भात, दाल, रोटी, शाक और चटनी आदि भी।

२४. मिश्रितप्रकरणम् [१]

१	नित्यप्रति किं वेतनं दास्यते?	नित्य प्रति क्या नौकरी दोगे?
२	प्रत्यहं द्वादश पणाः।	प्रतिदिन बारह पैसे।
३	वस्त्राणि श्लक्ष्णे पट्टे प्रक्षालनीयानि।	कपड़े चिकने साफ पत्थर की पटिया पर धोना।
४	गा वने चारय।	गायें वन में चरा।
५	पुष्पवाटिकायां गन्तव्यमस्ति।	फूलों की बगीची में जाना है।
६	आम्रफलानि पक्वानि न वा?	आम पके वा नहीं?
७	पक्वानि सन्ति।	पके हैं।
८	उपानहावानीयताम्	जूते लाओ।

२५. गमनागमनप्रकरणम् [२]

१	अयं रक्तोष्णीषः क्व गच्छति?	यह लाल पगड़ीवाला कहां जाता है?
२	स्वगृहम्।	अपने घर को।
३	अस्य कदा जन्माऽभूत्?	इसका कब जन्म हुआ था?
४	पञ्च संवत्सरा अतीताः।	पांच वर्ष बीते।
५	परेद्युर्ग्रामे गन्तव्यम्।	कल गांव पर जाना चाहिये।
६	गन्ताऽहम्।	मैं जाऊंगा।
७	भवान् पूर्वेद्युः क्व गतः?	आप कल कहां गये थे?
८	अयोध्याम्।	अयोध्या को।
९	तत्र किं कार्यमासीत्?	वहां क्या काम था?
१०	मित्रैः सह मेलनं कर्त्तव्यमासीत्।	मित्रों के साथ मिलना था।
११	कदागतोऽसि?	कब आया है?
१२	अद्यैवाऽऽगच्छामि।	आज ही आया हूं।

२६. रोगप्रकरणम्

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१	**अस्य कीदृशो रोगो वर्त्तते?**	इसको किस प्रकार का रोग है?
२	**जीर्णज्वरोऽस्ति।**	जीर्णज्वर (पुराना बुखार) वा ताप है।
३	**औषधं देहि।**	दवा दीजिये।
४	**ददामि।**	देता हूँ।
५	**परन्तु पथ्यं सदा कर्त्तव्यम्, कुतः? नहि पथ्येन विना रोगो निवर्त्तते।**	परन्तु पथ्य (परहेज) सदा करना चाहिये क्योंकि पथ्य के विना रोग निवृत्त नहीं होता।
६	**अयं कुपथ्यकारित्वात् सदा रुग्णो वर्त्तते।**	यह कुपथ्य (बदपरहेज) करने से सदा रोगी रहता है।
७	**अस्य पित्तकोपो वर्त्तते।**	इसको पित्त का कोप है।
८	**मम कफो वर्द्धत औषधं देहि।**	मुझ को कफ़ बढ़ता जाता है, दवा दीजिये।
९	**निदानं कृत्वा दास्यामि।**	रोग की परीक्षा करके दूंगा।
१०	**अस्य महान् कासश्वासोऽस्ति।**	इसको बड़ा कासश्वास अर्थात् दमा है।
११	**मम शरीरे तु वातव्याधिर्वर्त्तते।**	मेरे शरीर में तो वात की व्याधि है।
१२	**सङ्ग्रहणी निवृत्ता न वा?**	संग्रहणी छूटी वा नहीं?
१३	**अद्यपर्यन्तं तु न निवृत्ता खलु।**	आज तक तो नहीं छूटी।
१४	**औषधं संसेव्य पथ्यं करोषि न वा?**	दवा का सेवन करके पथ्य करते हो वा नहीं?
१५	**क्रियते, परन्तु सुवैद्यो न मिलति कश्चिद्, यः सम्यक् परीक्ष्यौषधं दद्यात्।**	करता तो हूँ, परन्तु अच्छा वैद्य नहीं मिलता कि जो अच्छे प्रकार परीक्षा करके दवा देवे।
१६	**तृषाऽस्ति चेज्जलं पिब।**	प्यास हो तो जल पी।

२७. मिश्रितप्रकरणम् [२]

१	**इदानीं शीतं निवृत्तम्, उष्णसमय आगतः।**	अब तो शीत की निवृत्ति होकर गरमी का समय आया।
२	**हेमन्ते क्व स्थितः?**	जाड़े में कहां रहा था?

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
[३ वंगेषु[१]।	बङ्गाल में।][१]
४ पश्य! मेघोन्नतिं कथं गर्जति विद्योतते च।	देखो! मेघ की बढ़ती, कैसा गर्जता और चमकता है।
५ अद्य महती वृष्टिर्जाता यया तडागा नद्यश्च पूरिताः।	आज बड़ी वर्षा हुई जिससे तलाब और नदियां भर गईं।
६ शृणु, मयूराः सुशब्दयन्ति।	सुनो, मोर अच्छा शब्द करते हैं।
७ कस्मात् स्थानादागतः?	किस स्थान से आया?
८ जङ्गलात्।	जङ्गल से।
९ तत्र त्वया कदापि सिंहो दृष्टो न वा?	वहां तूने कभी सिंह देखा था वा नहीं?
१० बहुवारं दृष्टः।	कई वार देखा।
११ नदी पूर्णा वर्त्तते कथमागतः?	नदी भरी है, कैसे आया?
१२ नौकया।	नाव से।
१३ आरोहत हस्तिनं गच्छेम।	चढ़ो हाथी पर, चलें जायें।
१४ अहं तु रथेनागच्छामि।	मैं तो रथ से आऊंगा।
१५ अहमश्वोपरि स्थित्वा गच्छेयं शिविकायां वा।	मैं घोड़े पर सवार होके जाऊं अथवा पालकी पर।
१६ पश्य! शारदं नभः कथं निर्मलं वर्त्तते।	देखो! शरद् ऋतु का आकाश कैसा निर्मल है।
१७ चन्द्र उदितो न वा?	चन्द्रमा उगा वा नहीं?
१८ इदानीन्तु नोदितः खलु।	इस समय तो नहीं उगा है।
१९ कीदृश्यस्तारकाः प्रकाशन्ते।	किस प्रकार तारे प्रकाशमान हो रहे हैं।
२० सूर्योदयाच्चलन्नागच्छामि।	सूर्योदय से चला हुआ आता हूँ।
२१ क्वापि भोजन कृतं न वा?	कहीं भोजन किया वा नहीं?
२२ कृतम्मध्याह्नात् प्राक्।	किया था मध्याह्न से पूर्व।
२३ अधुनाऽत्र कर्त्तव्यम्।	अब यहां कीजिये।
२४ करिष्यामि।	करूंगा।

१. यह पाठ मूल और प्रथम संस्करण में नहीं है, बाद के संस्करणों में बढ़ाया है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ

२८. विवाहस्त्रीपुरुषालापप्रकरणम्

१	**त्वया कीदृशो विवाहः कृतः?**	तूने किस प्रकार का विवाह किया था?
२	**स्वयंवरः।**	स्वयंवर।
३	**स्त्र्यनुकूलाऽस्ति न वा?**	स्त्री अनुकूल है वा नहीं?
४	**सर्वथाऽनुकूला।**	सब प्रकार से अनुकूल है।
५	**कत्यपत्यानि जातानि सन्ति?**	कितने लड़के हुए हैं?
६	**चत्वारः पुत्रा द्वे कन्यके च।**	चार पुत्र और दो कन्या।
७	**भो स्वामिन्! नमस्ते।**	स्वामीजी! नमस्ते अर्थात् मैं आपका सत्कार करती हूं।
८	**नमस्ते प्रिये!**	नमस्ते प्रिया!
९	**काञ्चित्सेवामनुज्ञापय।**	कुछ सेवा की आज्ञा करिये।
१०	**सर्वथैव सेवयसि पुनराज्ञापनस्य काऽऽवश्यकतास्ति।**	सब प्रकार की सेवा करती ही हो फिर आज्ञा करने की क्या आवश्यकता है।
११	**अधुना भवाञ्छ्रमं कृतवानत उष्णेन जलेन स्नातव्यम्।**	आज आपने श्रम किया है, इस लिये गरम जल से स्नान करना चाहिये।
१२	**गृहाणेदं जलमासनं च।**	लीजिये यह जल और आसन।
१३	**इदानीं भ्रमणाय गन्तव्यम्।**	इस घड़ी घूमने के लिये जाना चाहिये।
१४	**क्व गच्छेव?**	कहा जायें?
१५	**उद्यानेषु।**	बगीचों में।

२९. स्त्रीश्वश्रूश्वशुरादिसेव्यसेवकप्रकरणम्

१	**हे श्वश्रु! सेवामाज्ञापय किं कुर्याम्?**	हे सास! सेवा की आज्ञा कीजिये क्या करूं?
२	**सुभगे! जलं देहि।**	सुभगे! जल दे।
३	**गृहाणेदमस्ति।**	लीजिये यह है।
४	**हे श्वशुर! भवान् किमिच्छत्याज्ञापयतु।**	हे श्वसुर! आपकी क्या इच्छा है, आज्ञा दीजिये।
५	**हे वशंवदे! त्वत्सेवयाऽहमतीव तुष्टोऽस्मि।**	हे वंशवदे तेरी सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूं।

३०. ननन्दृभ्रातृजायासंवादप्रकरणम्

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१	**हे ननन्दरिहागच्छ वार्त्तालापं कुर्याव।**	हे ननन्द! यहां आओ, बातचीत करें।
२	**वद भ्रातृजाये! किमिच्छसि?**	कहो भौजाई! क्या इच्छा है?
३	**तव पतिः कीदृशोऽस्ति?**	तेरा पति कैसा है?
४	**अतीव सुखप्रदो यथा तव।**	अत्यन्त सुख देने वाला है, जैसा तेरा।
५	**मया त्वीदृशः पतिः सुभाग्येन लब्धोऽस्ति।**	मैंने तो इस प्रकार का पति अच्छे भाग्य से पाया है।
६	**कदाचित्किञ्चिदप्रियं तु न करोति?**	कभी कोई बुराई तो नहीं करता?
७	**कदापि नहि, किन्तु सर्वदा प्रीतिं वर्द्धयति।**	कभी नहीं, किन्तु सब दिन प्रीति ही बढ़ाता जाता है।
८	**पश्याभ्यां बाल्यावस्थायां विवाहः कृतोऽतः सदा दुःखितौ वर्त्तेते।**	देखो! इन दोनों ने बाल्यावस्था में विवाह किया है, इससे सदा दुःखी रहते हैं।
९	**यान्यपत्यानि जातानि तान्यपि रुग्णानि, अग्रेऽपत्यस्याऽऽशैव नास्ति निर्बलत्वात्।**	जो लड़के हुए वे रोगी, आगे लड़के होने की आशा ही नहीं है निर्बलता से।
१०	**पश्य! तव मम च कीदृशानि पुष्टान्यपत्यानि द्विवर्षानन्तरं जायन्ते।**	देखो! तेरे और मेरे कैसे पुष्ट तैयार लड़के दो वर्ष के बाद होते जाते हैं।
११	**सर्वदा प्रसन्नानि सन्ति वर्द्धन्ते च सुशीलत्वात्।**	सब काल में प्रसन्न बढ़ते जाते हैं सुशीलता से।
१२	**नह्यस्मिन् संसारेऽनुकूलस्त्रीपतिजन्यसदृशं सुखं किमपि विद्यते।**	इस संसार में अनुकूल स्त्री और पुरुष के सदृश सुख दूसरा कोई नहीं है।
१४	**इदानीं वृद्धाऽवस्था प्राप्ता, यौवनं गतम्, केशाः श्वेता जाताः, प्रतिदिनं बलं ह्रसति च।**	इस समय वृद्धावस्था आई, जवानी गई, बाल सफेद हुए और नित्य बल घटता है।
१५	**सोऽद्य गमनागमनमपि कर्तुमशक्तो जातः।**	वह इस समय आने-जाने में भी असमर्थ हो गया है।
१६	**बुद्धेर्विपर्यासत्वाद्विपरीतं भाषते।**	बुद्धि के विपरीत होने से उलटा बोलता है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१७ अद्याऽस्य मरणसमय आगत ऊर्ध्वश्वासत्वात्।	आज इसके मरने का समय आया, ऊपर को श्वास के चलने से।
१८ सोऽद्य मृतः।	वह आज मर गया।
१९ नीयतां श्मशानं वेदमन्त्रैर्घृतादिभिर्दह्यताम्।	ले चलो श्मशान को, वेदमन्त्रों करके घी आदि सुगन्ध से दहन करो।
२० शरीरं भस्मीभूतं जातमतस्तृतीयेऽहनि सभस्मास्थिसञ्चयनं कार्यमेतत् कृत्वा पुनस्तन्निमितं शोकादिकं किञ्चिदपि नैव कार्यम्।	शरीर भस्म हो गया, आज से तीसरे दिन राख सहित हाड़ों को वेदी से अलग करके फिर उसके निमित्त शोकादि कुछ भी न करना चाहिये।
२१ त्वं मातापित्रोः सेवां न करोष्यतः कृतघ्नी वर्त्तसेऽतो मातापितृसेवा केनापि नैव त्याज्या।	तू माता पिता की सेवा नहीं करता है इस कारण कृतघ्नी है, इससे माता-पिता की सेवा का त्याग किसी को कभी न करना चाहिये।

३१ सायंकालकृत्यप्रकरणम्

१ इदानीन्तु सन्ध्यासमय आगतः सायंसन्ध्यामुपास्य भोजनं कृत्वा भ्रमणं कुरुत।	अब तो सन्ध्या समय आया, सन्ध्योपासन और भोजन करके घूमना-घामना करो।
२ अद्य त्वया कियत् कार्यं कृतम्?	आज तूने कितना काम किया?
३ एतावत्कृतमेतावदवशिष्टमस्ति।	इतना किया और इतना बाकी है।
४ अद्य कियान् लाभो व्ययश्च जातः?	आज कितना लाभ और खर्च हुआ है?
५ पञ्चशतानि मुद्रा लाभः, सार्द्धद्वे शते व्ययश्च।	पांच सौ रुपये लाभ और ढाई सौ खर्च हुए।
६ इदानीं सामगानं क्रियताम्।	इस समय सामवेद का गान कीजिये।
७ वीणादीनि वादित्राण्यानीयताम्।	वीणादिक बाजे लाइये।
८ आनीतानि।	लाये।
९ वाद्यताम्।	बजाइये।
१० गीयताम्।	गाइये।
११ कस्य रागस्य समयो वर्त्तते?	किस राग का काल है?

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१२ षड्जस्य।	षड्ज का।
१३ इदानीं दशघटिकाप्रमिता रात्रिर्गता शयीरन्।	इस समय दश घड़ी रात बीती, सोइये।
१४ गम्यतां स्वस्वस्थानम्।	जाओ अपने अपने जगह को।
१५ स्वस्वशय्यायां शयनं कर्त्तव्यम्।	अपने अपने बिछौने पर सोइये।
१६ सत्यमेवमेतदीश्वरकृपया सुखेन रात्रिर्गच्छेत् प्रभातमागच्छेत्।	सत्य है, ऐसे ही ईश्वर की कृपा से सुख से रात बीते और सवेरा हो।

३२. शरीराऽवयवप्रकरणम्

१ अस्य शिरः स्थूलं वर्त्तते।	इसका शिर बड़ा है।
२ देवदत्तस्य मूर्द्धनि केशाः कृष्णा वर्त्तन्ते।	देवदत्त के शिर के बाल काले हैं।
३ मम तु खलु श्वेता जाताः।	मेरे तो सफेद हो गये।
४ तवापि केशा अर्द्धश्वेताः।	तेरे भी बाल आधे सफेद हैं।
५ अस्य ललाटं सुन्दरमस्ति।	इसका माथा सुन्दर है।
६ अयं शिरसा खल्वाटः।	इसके शिर में बाल नहीं हैं।
७ तस्योत्तमभ्रुवौ स्तः।	उसके अच्छी भौहें हैं।
८ श्रोत्रेण शृणोषि न वा?	कान से सुनता है वा नहीं?
९ शृणोमि।	सुनता हूँ।
१० अनया स्त्रिया कर्णयोः प्रशस्तान्याभूषणानि धृतानि।	इस स्त्री ने कानों में अच्छे सुन्दर गहने पहिने हैं।
११ किमयं कर्णाभ्यां बधिरोऽस्ति?	क्या यह कानों से बहिरा है?
१२ बधिरस्तु न परन्तु श्रवणाय ध्यानं न ददाति।	बहिरा तो नहीं है किन्तु सुनने के लिए ध्यान नहीं देता वा ख्याल नहीं करता।
१३ अयं विशालाक्षः।	यह बड़े नेत्रवाला है।
१४ त्वं चक्षुषा पश्यसि न वा?	तू आंख से देखता है वा नहीं?
१५ पश्यामि तु परन्त्विदानीं मन्ददृष्टिर्जातोऽहमस्मि।	देखता तो हूँ, परन्तु इस समय मन्ददृष्टि अर्थात् थोड़ी दृष्टिवाला हो गया हूँ।
१६ इदानीन्ते रक्ते अक्षिणी कथं वर्त्तेते?	इस समय तेरी आँखें लाल क्यों हैं?

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१७ यतोऽहं शयनादुत्थितः।	जिससे सोके उठा हूँ इस कारण से।
१८ स काणो धूर्तोऽस्ति।	वह काना बदमाश है।
१९ द्रष्टव्यमयमन्धः सचक्षुष्कवत् कथं गच्छति।	देखो! यह अन्धा आँखवाले के समान कैसे जाता है।
२० तवाऽक्षिणी कदा नष्टे?	तेरी आँखें कब नष्ट हुईं?
२१ यदाऽहं पञ्चवर्षोऽभूवम्।	जब मैं पांच वर्ष का था।
२२ इदानीम्मन्नेत्रे रोगोऽस्ति स कथं निवर्त्स्यते?	इस समय मेरे नेत्र में रोग है, वह कैसे निवृत्त होगा?
२३ अञ्जनादीन्यौषधान्युषित्वा निवर्त्तिष्यते।	अञ्जनादिक औषध के सेवन से निवृत्त होगा।
२४ तस्य नासिकोत्तमास्ति।	उसकी नाक अति सुन्दर है।
२५ भवानपि शुकनासिकः।	आप भी सुग्गे के सी नाकवाले हैं।
२६ घ्राणेन गन्धं जिघ्रसि न वा?	नाक से गन्ध को सूंघते हो वा नहीं?
२७ श्लेष्मकफत्वान्मया नासिकया गन्धो न प्रतीयते।	सरदी कफ होने से मुझको नासिका से गन्ध की प्रतीति नहीं होती।
२८ अयं पुरुषः सुकपोलोऽस्ति।	यह पुरुष अच्छे गाल वाला है।
२९ अतिस्थूलत्वादस्य नाभिर्गभीरा।	बहुत मोटा होने से इसकी नाभि गहरी है।
३० त्वमद्य प्रसन्नमुखो दृश्यसे किमत्र कारणम्?	तू आज प्रसन्नमुख दिखाई देता है इसका क्या कारण है?
३१ अयं सदैवाह्लादितवदनो विद्यते।	यह सब दिन प्रसन्नमुख बना रहता है।
३२ अस्यौष्ठौ श्रेष्ठौ वर्त्तेते।	इसके ओष्ठ बहुत अच्छे हैं।
३३ अयं लम्बौष्ठत्वाद् भयङ्करोऽस्ति।	यह लम्बे ओष्ठवाला है इससे भयङ्कर दिखाई देता है।
३४ सर्वैर्जिह्वया स्वादो गृह्यते।	सब लोग जीभ से स्वाद का ग्रहण किया करते हैं।
३५ वाचा च सत्यं प्रियं मधुरं सदैव वाच्यम्।	वाणी से सत्य, प्रिय और मधुर सदैव बोलना चाहिये।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
३६ नैव केनचित्खल्वनृतादिकं वक्तव्यम्।	कभी किसी को झूठ बोलना न चाहिये।
३७ अयं सुदन् वर्त्तते।	यह अच्छे सुन्दर दांतवाला है।
३८ तव दन्ता दृढास्सन्ति वा चलिताः ?	तेरे दांत दृढ़ हैं वा चलते हैं ?
३९ मम तु दृढा अस्य तु त्रुटिताः सन्ति।	मेरे तो दृढ़ हैं अर्थात् निश्चल हैं और इसके तो टूट भी गये हैं।
४० मन्मुख एकोऽपि दन्तो नास्त्यतः कष्टेन भोजनादिकं करोमि।	मेरे मुख में एक भी दांत नहीं है इससे क्लेश से भोजन करता हूँ।
४१ अस्य श्मश्रूणि लम्बीभूतानि सन्ति।	इसकी मूंछें लम्बी हैं।
४२ तव चिबुकस्योपरि केशा न्यूनाः सन्ति।	तेरी ठोड़ी के ऊपर बाल थोड़े हैं।
४३ अस्य हनुर्महान् वर्त्तते।[१]	इसकी ठोड़ी बड़ी है।[१]
४४ त्वया कण्ठ इदं किमर्थं बद्धमस्ति ?	तूने गले में यह किसलिये बांधा है ?
४५ अस्योरो विस्तीर्णमस्ति।	इसकी छाती बड़ी है।
४६ त्वया हृदये किं लिप्तम् ?	तूने छाती में क्या लगाया है ?
४७ इदानीं हेमन्तोऽस्त्यतः केशरकस्तूर्यौ लिप्ते।	इस समय शीतकाल है, इसलिये केसर और कस्तूरी लगाई है।
४८ तथा हृच्छूलनिवारणायौषधम्।	वैसे ही हृदयशूल निवारण के लिये औषध=दवाई।
४९ माणवकः स्तनाद् दुग्धं पिबति।	बालक स्तन से दूध पीता है।
५० पश्य! देवदत्तायं लम्बोदरो वर्त्तते।	देख देवदत्त! यह बड़ा पेटवाला अर्थात् तोंदवाला है।
५१ अयं तु खलु क्षामोदरः।	यह तो छोटे पेटवाला है।
५२ तव पृष्ठे किं लग्नमस्ति ?	तेरी पीठ में क्या लगा है ?
५३ किं स्कन्धाभ्यां भारं वहसि ?	क्या कन्धों पर बोझा ढोता है ?
५४ पश्याऽस्य क्षत्रियस्य बाह्वोर्बलं येन स्वभुजबलप्रतापेन राज्यं वर्द्धितम्।	देख! इस क्षत्रिय का बाहुबल अर्थात् बांह का जोर जिसने अपने बाहुबल के प्रताप से राज्य को बढ़ाया है।
५५ मनुष्येण हस्ताभ्यामुत्तमानि धर्म्म-	मनुष्य हाथों से उत्तम धर्मयुक्त कर्म करै,

१. यह वाक्य मूल में है, प्रथम संस्करण में नहीं है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
कार्याणि सेव्यानि नैव कदाचिदधमानि।	न कभी अधर्म कर्मों को।
५६ **अस्य करपृष्ठे करतले च घृतं लग्नमस्ति**	इसके हाथ की पीठ और तले में घी लगा है।
५७ **मुष्टिबन्धने एकत्राङ्गुष्ठ एकत्र चतुरङ्गुलयो भवन्त।**	मूंठी बांधने में एक ओर अंगूठा और एक ओर चार अंगुली होती हैं।
५८ **शरीरस्य मध्यभागो नाभिः पुरतः, पश्चिमतः कटिः कथ्यते।**	शरीर के आगे बीच भाग को नाभि और पीछे के भाग को पीठ कहते हैं।
५९ **अयं मल्लः स्थूलोरुः।**	यह पहलवान मोटी जंघावाला है।
६० **माणवको जानुभ्यां गच्छति।**	लड़का घुटनों के बल से चलता है।
६१ **अद्यातिगमनेन जङ्घे पीडिते स्तः।**	आज बहुत चलने से जांघें दूखती हैं।
६२ **अहं पद्भ्यां ह्यो ग्राममगमम्।**	मैं पैदल कल गाम को गया था।
६३ **अस्य शरीरे दीर्घाणि लोमानि सन्ति तव शरीरे च न्यूनानि सन्ति।**	इसके शरीर में बड़े रोम हैं, तेरे शरीर में थोड़े रोएं हैं।
६४ **अस्य शरीरचर्म श्लक्ष्णं वर्त्तते।**	इसके शरीर का चमड़ा चिकना है।
६५ **पश्यास्य नखा आरक्ताः सन्ति।**	देख! इसके नख कुछ कुछ लाल हैं।
६६ **अयं दक्षिणेन हस्तेन भोजनं वामेन जलं च पिबति।**	यह दहिने हाथ से भोजन और बायें से जल पीता है।
६७ **इदानीं त्वया श्रमः कृतोऽस्ति यतो धमनिः शीघ्रं चलति।**	इस समय तूने श्रम किया है, इससे नाड़ी शीघ्र चलती है।
६८ **अधुना तु ममान्तस्त्वग् दह्यतेऽस्थिषु पीडापि वर्त्तते।**	इस समय मेरे भीतर की त्वचा जलती है और हाड़ों में पीड़ा भी है।

३३. राजसभाप्रकरणम्

१	**तिष्ठ भो देवदत्ताहं! त्वया सह राजसभां गच्छामि।**	ठहर देवदत्त! तेरे साथ मैं भी राजा की सभा को चलता हूँ।
२	**सभाशब्दस्य कः पदार्थः?**	सभा शब्द का क्या अर्थ है?
३	**या सत्यासत्यनिर्णयाय प्रकाशयुक्ता वर्त्तेत।**	जो सच-झूठ के निर्णय करने के लिये प्रकाश से सहित हो।
४	**तत्र कति सभासदः सन्ति?**	वहां कितने सभासद् हैं?

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
५ **सहस्रम्।**	हजार।
६ **या मम ग्रामे सभास्ति तत्र खलु पञ्चाशत् सभासदस्सन्ति।**	जो मेरे गाम में सभा है उसमें तो पचास सभासद् हैं।
७ **इदानीं सभायां कस्य विषयस्योपरि विचारो विधातव्यः ?**	इस समय सभा में किस विषय पर विचार करना चाहिये ?
८ **युद्धस्य।**	युद्ध का अर्थात् लड़ाई का।
९ **तेन सह युद्धं कर्त्तव्यं न वा ? यदि कर्त्तव्यं तर्हि कथम् ?**	उसके साथ युद्ध करना चाहिये वा नहीं ? यदि करना चाहिए, तो कैसे ?
१० **यदि स धर्मात्मा तदा तु न कर्त्तव्यम्।**	जो वह धर्मात्मा हो तब तो उससे युद्ध करना योग्य नहीं।
११ **पापिष्ठश्चेत्तर्हि तेन सह योद्धव्यमेव।**	और जो वह पापी हो तो उससे युद्ध करना ही चाहिये।
१२ **सोऽन्यायेन प्रजां सततं पीडयत्यतो महापापिष्ठः।**	वह अन्याय से प्रजा को निरन्तर पीड़ा देता है, इस कारण से वह बड़ा पापी है।
१३ **एवं चेत्तर्हि शस्त्रास्त्रप्रक्षेपयुद्धकुशला बलिष्ठा कोशधान्यादिसामग्रीसहिता सेना युद्धाय प्रेषणीया।**	यदि ऐसा है तो शस्त्र अस्त्र फेंकने वा चलाने और युद्ध में कुशल, बड़ी लड़ने वाली, खजाना और अन्नादि सामग्री सहित सेना युद्ध के लिये भेजनी चाहिये।
१४ **सत्यमेवात्र वयं सर्वे सम्मतिं दद्मः।**	सच ही है, इसमें हम सब लोग सम्मति वा सलाह देते हैं।
१५ **इदानीं कस्यां दिशि कैः सह युद्धं वर्त्तते ?**	इस समय किस दिशा में किन के साथ युद्ध होता है ?
१६ **पश्चिमायां दिशि यवनैः सह हरिवर्षस्थानाम्।**[१]	पश्चिम दिशा में मुसलमानों के साथ हरिवर्षस्थ अर्थात् यूरोपियन अंग्रेज लोगों का।

१ जिस समय यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय अफगानों के साथ अंग्रेजों का युद्ध हो रहा था। अफगानों के साथ दूसरी लड़ाई सन् १८७८-७९ में तथा तीसरी १८७९-८१ तक हुई थी। सम्भवतः यहाँ अफगानों की तीसरी लड़ाई

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१७ पराजिता[1] अपि यवना अद्याप्युपद्रवं न त्यजन्ति।	हारे हुए भी मुसलमान लोग अब उपद्रव भी धूमधाम नहीं छोड़ते।
१८ अयं खलु पशुपक्षिणामपि स्वभावोऽस्ति यदा कश्चित्तद्गृहादिकं ग्रहीतुमिच्छेत् तदा यथाशक्ति युध्यन्त एव।[2]	यह तो पशु-पक्षियों का भी स्वभाव है कि जब कोई उनके घर आदि को छीन लेने की इच्छा करता है तब यथाशक्ति युद्ध करते अर्थात् लड़ते ही हैं।

३४. ग्राम्यपशुप्रकरणम्

१	भो गोपाल! गा वने चारय।	हे अहीर! गौओं को वन में चरा।
२	तत्र या धेनवस्ताभ्योऽर्द्धं दुग्धं त्वया दुग्ध्वा स्वामिभ्यो देयमर्द्धं च वत्सेभ्यः पाययितव्यम्।	वहाँ जो गौएं हैं उनसे आधा दूध दुहकर तू मालिक को ग्रहण करा अर्थात् दो और आधा बछड़ों को पिला।
३	एतौ वृषभौ रथे योजयितुं योग्यौ स्तः, इमौ हले खलु।	ये दोनों बैल गाड़ी में वा रथ में जोतने के योग्य हैं, और ये दोनों हल ही में।
४	पश्येमाः स्थूला महिष्यो वने चरन्ति।	देख! ये मोटी भैंसें वन में चरती हैं।
५	आगच्छ भो! द्रष्टव्यम्महिषाणां युद्धं परस्परं कीदृशं भवति।	आओ जी! देखने योग्य भैसों का युद्ध किस प्रकार परस्पर आपस में हो रहा है।
६	अस्य राज्ञो बहव उत्तमा अश्वाः सन्ति।	इस राजा के यहाँ बहुत से उत्तम घोड़े हैं।
७	किमियं राज्ञः सतुरङ्गा सेना गच्छति?	क्या यह राजा की घोड़ों सहित सेना जाती है?

की ओर संकेत है क्योंकि यह पुस्तक सन् १८८० के फरवरी वा मार्च में लिखी गई थी। —युधिष्ठिर मीमांसक

१ सन् १८७८-७९ के युद्ध में अफगान पराजित हो गये थे, परन्तु उन्होंने कुछ समय पीछे ही अफगानिस्तान में स्थित अंग्रेज रेजिडेण्ट Louis Cavagnari को मार डाला था। इस पर तीसरी लड़ाई आरम्भ हुई।

२ ऋषि दयानन्द ने यहाँ परोक्ष रूप से गहरी राजनीर्ति का परिचय दिया है। और अफगानों की दूसरी लड़ाई में अफगानों से बलात् छीने गये क्वेटा और बिलोचिस्तान की ओर संकेत करके भारत के प्रथम स्वातन्त्र्ययुद्ध (संवत् १९१४, सन् १८५७) को युक्त बताया है और आगे भी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते रहने का संकेत किया है। —युधिष्ठिर मीमांसक

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
८ श्रोतव्यं! हरयः कीदृशं ह्रेषन्ते।	सुनिये! घोड़े किस प्रकार हिनहिनाते हैं
९ यथा हस्तिनः स्थूलाः सन्ति तथा हस्तिन्योऽपि।	जैसे हाथी मोटे हैं वैसी हथिनी भी हैं।
१० नागाः समं गच्छन्ति।	हाथी बराबर चाल से चलते हैं।
११ शृणु! करिणः कीदृशं शब्दयन्ति।	सुन! हाथी कैसा शब्द करते हैं।
१२ पश्येमे गजोपरि स्थित्वा गच्छन्ति।	देख! ये हाथी पर बैठ कर जाते हैं।
१३ अस्य राज्ञः कतीभास्सन्ति?	इस राजा के यहाँ कितने हाथी हैं?
१४ पञ्च सहस्राणि।	पांच हजार।
१५ रात्रौ श्वानः प्रबुक्कन्ति।	रात में कुत्ते भौंकते हैं।
१६ प्रातः कुक्कुटाः सम्प्रवदन्ति।[१]	सवेरे मुरगे बोलते हैं।
१७ मार्जारो मूषकानत्ति।	बिल्ला मूसों को खाता है।
१८ कुलालस्य गर्द्दभा अतिस्थूलाः सन्ति।	कुम्भार के गदहे अत्यन्त मोटे हैं।
१९ शृणु! लम्बकर्णा रेकन्ते।	सुन! लम्बे कानों वाले गदहे रेंकते हैं।
२० ग्राम्यशूकराः पुरीषं भक्षित्वा भूमिं शुन्धन्ति।	गाँव के सुअर मैला खाके भूमि को शुद्ध करते हैं।
२१ उष्ट्रा भारं वहन्ति।	ऊंट बोझा ढोते हैं।
२२ अजाविपालोऽजा अवीर्दोग्धि।	गड़रिया बकरी और भेड़ी को दुहता है।
२३ पशवोऽपुर्नद्यां जलम्।	पशुओं ने नदी में जल पिया।
२४ रक्तमुखो वानरोऽतिदुष्टो भवति कृष्णास्तु श्रेष्ठः खलु।	लाल मुख का बन्दर बड़ा दुष्ट और काले मुंह का लंगूर अच्छा होता है।
२५ वानरी मृतमपि बालकं न त्यजति।	बन्दरी मरे हुए भी बच्चे को नहीं छोड़ती।
२६ गोपालेन गावो दुग्धा न वा?	ग्वाले ने गौ दुही वा नहीं?
२७ कपिलाया गोर्मधुरं पयो भवति।	कपिला गौ का दूध मीठा होता है।
२८ अयं वृषभः कियता मूल्येन क्रीतः?	यह बैल कितने मोल से खरीदा है?
२९ शतेन रूप्यैः।	सौ रुपयों से।
३० कतिभिः कार्षापणैः प्रस्थं पयो मिलति।	कितने पैसों से सेर दूध मिलता है?
३१ द्वाभ्यां पणाभ्याम्।	दो पैसों से।

१. यह वाक्य ग्राम्यस्थपक्षिप्रकरण में होना चाहिये। सम्पादक

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
३२ पश्य देवदत्त! वानराः कथं प्लवन्ते।	देख देवदत्त! बन्दर कैसे कूदते हैं।
३३ अयं महाहनुत्वाद्धनुमान्वर्त्तते।	यह बन्दर बड़ी (ठोड़ी) वाला होने से हनुमान् है।

३५. ग्रामस्थपक्षिप्रकरणम्

१ एताभ्यां चटकाभ्यां प्रासादे नीडं रचितम्।	इन चिड़ियों ने अटारी पर घोसला बनाया है।
२ अत्राण्डानि धृतानि।	यहां अण्डे धरे हैं।
३ इदानीं तु चाटकैरा अपि जाताः।	अब तो इनके बच्चे भी हो गये हैं।
४ पश्य विष्णुमित्र! कुक्कुटयोर्युद्धम्।	देख विष्णुमित्र! मुरगों की लड़ाई।
५ कुक्कुटी स्वानण्डान् सेवते।	मुरगी अपने अण्डों को सेवती है।
६ पश्य! शुकानां समूहश्शब्दयन्नुड्डीयते।	देख! सुग्गों के झुण्ड शब्द करते उड़े जाते हैं।
७ रात्रौ काका न वाश्यन्ते।	रात में कौवे नहीं बोलते हैं।
८ भो भृत्य! ताडय ध्वांक्षमनेन मे पेयजल-पात्रे चञ्चुर्निक्षिप्य [जलं] विनाशितम्।	अरे नौकर! कौवे को उड़ादे, इसने मेरे पीने के जल के बरतन में चोंच डाल कर [जल] दूषित कर दिया।
९ वायसेन बालकहस्ताद्रोटिका हृता।	कौवे ने लड़के के हाथ से रोटी छीन ली।
१० पश्य! कीदृशं काकोलूकं युद्धं प्रवर्त्तते।	देख! किस प्रकार की कौवे और उल्लुओं की लड़ाई हो रही है।
११ अनेन शुकहंसतित्तिरिकपोताः पालिताः।	इसने सुग्गा, हंस, तीतर और कबूतर पाले हैं।

३६. वन्यपशुप्रकरणम्

१ वने रात्रौ सिंहाः गर्जन्ति।	वन में रात के समय सिंह गर्जते हैं।
२ शार्दूलं दृष्ट्वा सिंहाः निलीयन्ते।	शार्दूल को देखकर सिंह छिप जाते हैं।
३ ह्यः सिंहेन गौर्हता।	कल सिंह ने गौ को मार डाला।
४ परश्वो विक्रमवर्मणा सिंहो हतः।	परसों विक्रम क्षत्रिय ने सिंह को मारा।
५ द्रष्टव्यं! हस्तिसिंहयो रणम्।	देखिये! हाथी और सिंह की लड़ाई।
६ जङ्गले हस्तिसमुदाया विचरन्ति।	जंगल में हाथियों के झुण्ड घूमते हैं।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
७ इदानीमेव वृकेण मृगो गृहीतः।	अभी भेड़िया ने हिरन को पकड़ लिया।
८ अयं कुक्कुरो बलवाननेन सिंहेन सहाप्याजिः कृता।	यह कुत्ता बड़ा बलवान् है, इसने सिंह के साथ भी लड़ाई की।
९ पश्य! सिंहवराहयोः संग्रामम्।	देख! सिंह और सूवर का युद्ध।
१० शूकरा इक्षुक्षेत्राणि भक्षित्वा विनाशयन्ति।	शूकर ऊख के खेतों को खाकर नष्ट कर देते हैं।
११ पश्य! वेगेन धावतो मृगान्।	देख! वेग से दौड़ते हुए हिरनों को।
१२ अयं रुरुर्वृषभवत्स्थूलोऽस्ति।	यह काला रोझ बैल के समान मोटा है।
१३ यो निलीयोत्प्लुत्य धावति स शशस्त्वया दृष्टो न वा?	जो छिप कर कूद के दौड़ता है, वह शशा तूने देखा है वा नहीं?
१४ बहून् दृष्टवान्।	बहुतों को देखा है।
१५ कदाचिद्भालवोऽपि दृष्टा न वा?	कभी भालुओं को भी देखा है वा नहीं?
१६ एकदर्क्षेन साकं मम युद्धं जातम्।	एक समय रीछ के साथ मेरी लड़ाई हुई थी।
१७ रात्रौ शृगाला क्रोशन्ति।	रात में सियार रोते हैं।
१८ कदाचित्खड्गोऽपि दृष्टो न वा?	कभी गैंडा भी देखा वा नहीं?
१९ य आरण्या महिषा बलवन्तो भवन्ति तान्कदाचिद् दृष्टवान्न वा?	जो बनैले भैंसे बड़े बलवान् होते हैं, उनको देखा वा नहीं?

३७. वनस्थपक्षिप्रकरणम्

१ अयं देवदत्तो हंसगत्या गच्छति।	यह देवदत्त हंस के समान चलता है।
२ कदाचित् सारसावपि उड्डीयमानौ क्रीडन्तौ महाशब्दं कुरुतः।	कभी सारस पक्षी भी उड़ते और क्रीडते हुए बड़े शब्द करते हैं।
३ श्येनेनातिवेगेन वर्तिका हता।	बाज ने बड़े वेग से बटेर को मारा।
४ शृणु! तित्तिरयः कीदृशं मधुरं वदन्ति।	सुन! तीतर किस प्रकार मधुर बोलते हैं।
५ वसन्ते पिकाः प्रियं शब्दयन्ति।	वसन्त ऋतु में कोयल प्रियशब्द करती है।
६ काककोकिलवद् दुर्वचाः सुवाक् च मनुष्यो भवति।	कौवे और कोयल के सदृश, दुष्ट और अच्छा बोलनेवाला मनुष्य होता है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
७ पश्येमे मयूरा नृत्यन्ति।	देखिये! ये मोर नाचते हैं।
८ उलूका रात्रौ प्रचरन्ति।	उल्लू रात को विचरते हैं।
९ पश्य! बकः सरस्सु पाखण्डिजनवन्मत्स्यघाताय कथं ध्यायति।	देख! बगुला तलाबों में पाखण्डी मनुष्य के तुल्य मछली मारने के लिये किस प्रकार ध्यान करता है?
१० बलाका अप्येवमेव जलजन्तून् घ्नन्ति।	बलाका भी इसी प्रकार जलजन्तुओं को मारती हैं।
११ पश्य! कथञ्चकोरा धावन्ति?	देख! किस प्रकार चकोर दौड़ते हैं।
१२ येऽत्यूर्ध्वमाकाशे गत्वा मांसाय निपतन्ति ते गृध्रास्त्वया दृष्टा न वा?	जो बहुत ऊपर आकाश में जाकर मांस के लिये गिरते हैं उन गीधों को तूने देखा वा नहीं?
१३ मेनका मनुष्यवद्वदन्ति।	मैना मनुष्य के समान बोलती हैं।
१४ चिल्लिकार्माणवकहस्ताद्रोटिकां छित्त्वोड्डीयते।	चील्ह लड़के के हाथ से रोटी छीन कर उड़ जाती है।

३८. तिर्यग्जन्तुप्रकरणम्

१ सर्पाः शीघ्रं सर्प्पन्ति।	सर्प शीघ्र चलते हैं।
२ अयं कृष्णः फणी महाविषधारी।	यह काला सांप बड़ा विषवाला है।
३ भवता कदाचिदजगरोऽपि दृष्टो न वा?	आपने कभी अजगर भी देखा है वा नहीं?
४ पश्याहिनकुलयोः संग्रामो वर्त्तते।	देख! सांप और नेउले का युद्ध होता है।
५ स वृश्चिकेन दष्टो रोदिति।	वह बिच्छू ने काटा, रोता है।
६ इयं गोधा स्थूलास्ति।	यह गोह मोटी है।
७ मूषका बिले शेरते।	मूसे बिल में सोते हैं।
८ मक्षिकां भक्षित्वा वमनं प्रजायते।	मक्खी खाकर वमन हो जाता है।
९ अत्र वासोऽभिधेयो यन्निर्मक्षिकं वर्त्तते।	यहां वास करना चाहिये, जिससे मक्खी एक भी नहीं है।
१० मधुमक्षिकादंशेन शोथः प्रजायते।	मधु मक्खियों के काटने से सूज जाता है।
११ भ्रमरा रुत्वाः पुष्पेभ्यो गन्धं गृह्णन्ति।	भौंरे गूंजते हुए, फूलों से सुगन्धि ग्रहण करते हैं।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ

३९. जलजन्तुप्रकरणम्

१	तिमिङ्गिला मत्स्याः समुद्रे भवन्ति।	तिमिङ्गिल मछलियाँ समुद्र में होती हैं।
२	रोहूखड्गसिंहतुण्डराजीवलोचनाश्च कुण्डपुष्करिणीनदीतडागसमुद्रेषु निवसन्ति।	रोहू, खड्ग, सिंह, तुंड और राजीवलोचन इन नामों की मछलियाँ, कुण्ड, बावली, नदी, तलाब और समुद्र में वास करती हैं।
३	ग्राहः पशूनपि गृहीत्वा निगलति।	मगर पशुओं को भी पकड़ कर लील जाता है।
४	नक्रा अपि महान्तो भवन्ति।	घरियार (नाके) भी बड़े होते हैं।
५	कूर्माः स्वाङ्गानि सङ्कोच्य प्रसारयन्ति।	कछुए अपने शरीर के अङ्गों को समेट कर फैलाते हैं।
६	वर्षासु मण्डूकाः शब्दयन्ति।	वर्षा काल में मेंढक शब्द करते हैं।
७	जलमनुष्या अप्सु निमज्य तट आसते।	जल के मनुष्य पानी में डूबकर तीर पर बैठते हैं।

४०. वृक्षवनस्पतिप्रकरणम्

१	पिप्पलाः फलिता न वा?	पीपल फले हैं वा नहीं?
२	इमे वटाः सुच्छायास्सन्ति।	ये बड़ अच्छी छायावाले हैं।
३	पश्येम उदुम्बराः सफला वर्त्तन्ते।	देख! ये गूलर फलयुक्त हो रहे हैं।
४	इमे बिल्वाः स्थूलफलास्सन्ति।	ये बेल बड़े फलवाले हैं।
५	ममोद्यान आम्राः पुष्पिताः फलिताः सन्ति। इदानीं पक्वफला अपि वर्त्तन्ते।	मेरे बगीचे में आम फूले-फले हैं। इस काल में पके फल वाले भी हैं।
६	अस्याऽऽम्रस्य मधुराणि रसवन्ति च फलानि भवन्ति।	इस आम के मीठे और रसवाले फल होते हैं।
७	तस्य त्वम्लानि भवन्ति।	उसके तो खट्टे हैं।
८	पनसस्य महान्ति फलानि भवन्ति।	कटहल के बड़े फल होते हैं।
९	शिंशपायाः काष्ठानि दृढानि सन्ति शालस्य दीर्घाणि च।	शीशम की लकड़ी दृढ़ होती और सुखवे की लम्बी होती हैं।
१०	अस्य किङ्किरोः कण्टकास्तीक्ष्णा भवन्ति।	इस बबूल के कांटे तीखे होते हैं।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
११ **बदरीणां तु मधुराम्लानि फलानि, कण्टकाश्च कुटिला भवन्ति।**	बेरियों के फल तो मीठे खट्टे और इनके कांटे टेढ़े होते हैं।
१२ **कटुको निम्बो ज्वरं निहन्ति।**	कडुआ नीम ज्वर का नाश कर देता है।
१३ **निम्बूफलरसं सूपे निक्षिप्य भोक्तव्यम्।**	नींबू का रस दाल में डालके खाने योग्य है।
१४ **मम वाटिकायां दाडिमफलान्युत्तमानि जायन्ते।**	मेरे बगीचे में अनार बहुत अच्छे होते हैं।
१५ **नवरङ्गीफलान्यानय।**	नारंगी के फलों को ला।
१६ **वसन्ते पलाशाः पुष्यन्ति।**	वसन्त ऋतु में ढाक फूलते हैं।
१७ **उष्ट्राः शमीवृक्षपत्रफलानि भुञ्जते।**	ऊंट शमी अर्थात् खीजड़े के पत्ते और फलों को खाते हैं।

४१. औषधिप्रकरणम्

१ **कदलीफलानि पक्वानि न वा?**	केले के फल पके वा नहीं?
२ **तण्डुलादयस्तु वैश्यप्रकरणे लिखितास्तत्र द्रष्टव्याः।**	चावल इत्यादिक तो बनिये के प्रकरण में लिखे हैं वहां देख लेना।
३ **विषनिवारणायाऽपामार्गमानय।**	विष निवारण के लिये चिचिड़ा लाओ।
४ **निर्गुण्ड्याः पत्राण्यानेयानि।**	निर्गुण्डी के पत्ते लाने चाहियें।
५ **लज्जावत्याः किं जायते।**	लज्जावन्ती का क्या होता है?
६ **गुडुची ज्वरं निवारयति।**	गुडुच ज्वर को शान्त कर देती है।
७ **शंखावलीं दुग्धे पक्त्वा पिबेत्।**	शंखावली को दूध में पका के पिये।
८ **यथर्त्तुयोगं हरीतकी सेविता सर्वान् रोगान्निवारयति।**	जिस प्रकार से ऋतु ऋतु में हरड़े का सेवन करना योग्य है वैसे सेवी हुई सब रोगों को छुड़ा देती है।
९ **शुण्ठीमरीचपिप्पलीभिः कफवातरोगा निहन्तव्याः।**	सोंठ, मिर्च और पीपल से कफ़ और वात रोगों का नाश करना चाहिये।
१० **योऽश्वगन्धां दुग्धे पाचयित्वा पिबति स पुष्टो जायते।**	जो असगन्ध दूध में पका के पीता है, वह पुष्ट होता है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
११ इमानि कन्दानि भोक्तुमर्हाणि वर्त्तन्ते।	ये कन्द खाने के योग्य हैं।
१२ एतेषां तु शाकमपि श्रेष्ठं जायते।	इन कन्दों का शाक भी अच्छा होता है।
१३ अस्यां वाटिकायां गुल्मगुच्छलताः प्रशंसनीयाः सन्ति।	इस बगीचे में गुच्छा गुलाब और बेलें प्रशंसा के योग्य अर्थात् अच्छी हैं।

४२. आत्मीयप्रकरणम्

१ तव ज्येष्ठो बन्धुर्भगिनी च काऽस्ति?	तेरा बड़ा भाई और बहिन कौन हैं?
२ देवदत्तस्सुशीला च।	देवदत्त और सुशीला।
३ भो बन्धो! अहं पाठाय व्रजामि।	हे भाई! मैं पढ़ने के लिये जाता हूँ।
४ अत्युत्तमा वार्त्ता प्रिय! याहि समभ्यस्य पूर्णा विद्याः पठित्वैवागन्तव्यम्।[१]	हे प्रिय भाई! तूने बहुत उत्तम बात विचारी जा! अच्छे प्रकार अभ्यास से पूर्ण विद्या पढ़ ही के आना।[१]
[गच्छ प्रिय! पूर्णां विद्यां कृत्वा-गन्तव्यम्।[१]]	[जा प्यारे! पूरी विद्या को करके आना[१]]
५ भवतः कन्या अद्यश्वः किं पठन्ति?	आपकी बेटियाँ आजकल क्या पढ़ती हैं?
६ वर्णोच्चारणशिक्षादिकं पठित्वेदानीं दर्शनशास्त्राण्यधीत्य धर्मपाकशिल्प-गणितविद्या अधीयते।	वर्णोच्चारण शिक्षादि और न्याय शास्त्रादि पढ़कर अब धर्म, पाक, शिल्प और गणित विद्या पढ़ती हैं।
७ भवज्ज्येष्ठया भगिन्या किं किमधीत्येदानीं किं क्रियते?	आपकी बड़ी बहन क्या-क्या पढ़के, अब क्या करती है?
८ वर्णज्ञानमारभ्य वेदपर्यन्ताः सर्वा विद्या विदित्वेदानीं बालिकाः पाठयति।	अक्षराभ्यास से लेके वेद तक सब पूरी विद्या पढ़ के अब कन्याओं को पढ़ाया करती है।
९ तया विवाहः कृतो न वा?	उसने विवाह किया वा नहीं?
१० इदानीं तु न कृतः परन्तु वरं परीक्ष्य स्वयंवरं कर्तुमिच्छति।	अभी तक तो नहीं किया, परन्तु वर की परीक्षा करके स्वयंवर करने की इच्छा

१. संख्या ४ का पाठ मूल पाण्डुलिपि में है तथा कोष्ठान्तर्गत पाठ प्रथम संस्करण में है —सम्पादक

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
	करती है।
११ यदा कश्चित् स्वतुल्यः पुरुषो मिलिष्यति तदा विवाहं करिष्यति।	जब कोई अपने सदृश पुरुष मिलेगा तब विवाह करेगी।
१२ तव मित्रैरधीतं न वा?	तेरे मित्रों ने पढ़ा है वा नहीं?
१३ सर्व एव विद्वांसो वर्त्तन्ते यथाऽहं तथैव तेऽपि, कुतः, समानस्वभावेषु मैत्र्यास्सम्भवात्।	सब ही विद्वान् पण्डित हैं, जैसा मैं हूँ वैसे वे भी हैं, क्योंकि तुल्य स्वभाववालों में मित्रता का सम्भव है।
१४ तव पितृव्यः किं करोति?	तेरा चाचा क्या करता है?
१५ राज्यव्यवस्थाम्।	राज्य का कारबार।
१६ अयं तव मातुलोऽस्ति किम्?	यह तेरा मामा है क्या?
१७ अयं मातुल इयं पितृष्वसेयं मातृष्वसेयं गुरुपत्न्ययं च गुरुः।	यह मेरा मामा, यह बाप की बहिन (बुवा), यह माता की बहिन (मौसी), यह गुरु की स्त्री और यह मेरा गुरु है।
१८ इदानीमेते कस्मै प्रयोजनायैकत्र मिलिताः?	इस समय ये सब किसलिये मिलकर इकट्ठे हुए हैं?
२९ मया सत्कारायाऽऽहूताः सन्त आगताः।	मैंने सत्कार पूर्वक बुलाये हैं, सो ये सब आये हैं।
२० इमे मम पितृश्वश्रूश्वशुरश्यालादयः सन्ति।	ये सब मेरे पिता की सास, ससुर और साले आदि हैं।
११ इमे मम मित्रस्य स्त्रीभगिनीदुहितृ-जामातरः सन्ति।	ये मेरे मित्र की स्त्री, बहिन, लड़की और जमाई हैं।
२२ इमौ मम पितृव्यस्य श्यालदौहित्रौ स्तः।	ये मेरे चाचा का साला और दौहित्र हैं।

४३ सामन्तप्रकरणम्

१ त्वद्गृहनिकटे के वसन्ति?	तेरे घर के पास कौन रहते हैं?
२ ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः।	ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोग।
३ इमे राजसनीडनिवासिनः।	ये राजा के पास रहनेवाले हैं।

४४. कारुप्रकरणम्

१ भोस्तक्षन्! त्वया नौविमानरथ-	हे बढ़ई! तू नावें, विमान, रथ, गाड़ी और

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
	शकटहलादीनि निर्माय तत्र प्रशस्तानि कलायन्त्रकौशलानि रचनीयानि।	हल आदि रचके उनमें अत्युत्तम कला और यन्त्र आदि बना।
२	**इदं काष्ठं छित्त्वा पर्य्यङ्कं रचय।**	इस लकड़ी को काट के पलंग बना।
३	**अस्मात्कपाटाः सम्पादनीयाः।**	इससे किवाड़ों को बना।
४	**इमं वृक्षं किमर्थं छिनत्सि?**	इस वृक्ष को किसलिये काटता है?
५	**मुसलोलूखलनिर्माणाय।**	मूसल और ओखली बनाने के लिये।

४५. अयस्कारप्रकरणम्

१	**भो अयस्कार! त्वयाऽस्मादयसः बाणासिशक्तितोमरमुग्दरशतघ्नीभुशण्ड्यो निर्मातव्याः।**	हे लोहार! तू इस लोहे के बाण, तलवार बरछी, तोमर, मुग्दर, बंदूक और तोप बना दे।
२	**एतस्मात् क्षुरादीनि च।**	इससे छुरे आदि।
३	**इमौ कलशकटाहौ त्वया विक्रीयेते न वा?**	यह घड़ा और कड़ाही को तू बेचता है वा नहीं?
४	**विक्रीणामि।**	बेचता हूँ।
५	**एतान् कीलकण्टकान् किमर्थान् रचयसि?**	इन कील-कांटों को किसलिये बनाता है?
६	**विक्रयणाय।**	बेचने के लिये।

४६. सुवर्णकारप्रकरणम्

१	**त्वया सुवर्णादिकं नैव चोर्यम्।**	तू सोना आदि मत चोरना।
२	**आभूषणान्युत्तमानि निर्मिमीष्व।**	गहने अच्छे सुन्दर बना।
३	**अस्य हारस्य कियन्मूल्यमस्ति?**	इस हार का कितना मोल है?
४	**पञ्च सहस्राणि राजत्यो मुद्राः।**	पांच हजार रुपये।
५	**इमौ कुण्डलौ त्वया श्रेष्ठौ रचितौ वलयौ तु न प्रशस्तौ।**	ये कुण्डल तो तूने अच्छे बनाये, परन्तु कड़े तो बिगाड़ दिये।
६	**एतान्यङ्गुलीयकानि मुक्ताप्रवालहीरकनीलमणिजटितानि सम्पादय।**	ये अंगूठियाँ मोती, मूंगा, हीरा और नीलमणि से जड़ी हुई बना।
७	**एतेनालङ्कारा अत्युत्तमा रच्यन्ते।**	यह गहने बहुत अच्छे बनाता है।

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
८	**नासिकाभूषणं सद्यो निष्पादय।**	नथिआ (नथुनी) अभी बना दे।
९	**इदं मुकुटं केन रचितम्?**	यह मुकुट किसने बनाया?
१०	**शिवप्रतापेन।**	शिवप्रताप ने।
११	**अस्य सुवर्णस्य कटककङ्कण-नूपुरान् निर्माय सद्यो देहि।**	इस सोने के कड़ा, कंकनी वा कंगना और पजेब बनाके अभी दे।

४७. कुलालप्रकरणम्

१	**भो कुलाल! कुम्भशरावमृद्गवकान् निर्मिमीष्व।**	अरे कुम्भार! घड़ा, सकोरा और मिट्टी की गौओं को बना।
२	**घटं देह्यनेन जलमानेष्यामि।**	घड़ा दे, जल लाऊँगा।

४८. तन्तुवायप्रकरणम्

१	**भो तन्तुवाय! अस्य सूत्रस्य पटशाट्-युष्णीषाणि वय।**	ओ जुलाहे! इस सूत का पटका, साड़ी और पगड़ियाँ बुन।

४९. सूचीकारप्रकरणम्

१	**भो! सूच्या किं सीव्यसि?**	ओ! सूई से क्या सीता है?
२	**शिरोङ्गरक्षणाधोवस्त्राणि सीव्यामि।**	टोपी, अंगरखा और पाजामा सीता हूँ।

५०. मिश्रितप्रकरणम् [३]

१	**भो कारुक! कटं वय।**	अरे चटाईवाले! चटाई बुन।
२	**इमे व्याधा मृगादीन्पशून् हन्ति।**	ये बहेलिये हरिन आदि पशुओं को मारते हैं।
३	**किराता वने निवसन्ति।**	किरात अर्थात् भील लोग वन में रहते हैं।
४	**सकमलानि सरांसि कुत्र सन्ति?**	कमल के सहित वा कमलवाले तलाब कहां हैं?
५	**इमे तडागा ग्रीष्मे शुष्यन्ति।**	ये सब तलाब गरमी में सूख जाते हैं।
६	**कूपाज्जलमानय।**	तू कुएं से जल ला।
७	**अद्य वाप्यां स्नातव्यम्।**	आज बावड़ी में नहाना चाहिये।
८	**रञ्जकेन शतघ्नीभुशुण्ड्यादयश्-चलन्ति।**	बारूद से बंदूक और तोपें आदि चलती हैं।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
९ अयं कम्बलस्त्वया कस्माद् गृहीतः कस्मै प्रयोजनाय च?	यह कम्बल तूने किससे लिया और किस प्रयोजन के लिये?
१० कश्मीराच्छीतनिवारणाय।	कश्मीर से, जाड़ा छुड़ाने के लिये।
११ पश्य! माणवकाः क्रीडन्ति।	देख! लड़के खेलते हैं।
१२ अस्मिन् गृहे स्त्रस्तराणि श्रेष्ठानि सन्ति।	इस घर में बिछौने अच्छे हैं।
१३ इमे चोराः पलायन्ते।	ये चोर लोग भागे जाते हैं।
१४ तत्र दस्युभिरागत्य सर्वं धनं हृतम्।	वहां डाकूओं ने आकर सब धन हर लिया।
१५ द्वापरान्ते युधिष्ठिरादयो बभूवुः।	द्वापर के अन्त में युधिष्ठिरादिक हुए थे।
१६ मम पादे कण्टकः प्रविष्ट एनमुद्धर।	मेरे पैर में कांटा घुस गया, इसको निकाल।
१७ केशान् संवय।	बालों को संभाल।
१८ भो नापित! नखाञ्छिन्धि मुण्डय शिरः श्मश्रूणि च।	ओ नाऊ! नखों को काट, शिर मूण्ड और मूंछ भी काट डाल।
१९ अयं शिल्पी प्रासादमत्युत्तमं रचयति।	यह राज अटारी बहुत अच्छी बनाता है
२० अयं कोटपालो न्यायकारी वर्त्तते।	यह कोतवाल न्यायकारी वा इंसाफी है।
२१ स तु धर्मात्मा नैवास्त्यन्यायकारित्वात्।	वह कोटवाल तो धर्मात्मा नहीं है, अन्यायकारी होने से।
२२ एते राजमन्त्रिणः कुत्र गच्छन्ति?	ये राजा के मन्त्री लोग कहां जाते हैं?
२३ राजसभां न्यायकरणाय यान्ति।[१]	राजसभा को न्याय करने के लिये।[१]
२४ भोस्ताम्बूलानि देहि।	ओ! पान दे।
२५ ददामि।[२]	देता हूँ।[२]
२६ भोस्तैलकार! तिलेभ्यस्तैलं निस्सार्य देहि।	अरे तेली! तिलों से तैल निकाल कर दे।
२७ दास्यामि।[३]	दूंगा।[३]
२८ भो रजक! वस्त्राणि प्रक्षाल्य सद्यो देयानि।	अरे धोबी! कपड़ों को धोकर अभी दे।

१-३. ये वाक्य पाण्डुलिपि में नहीं है, प्रथम संस्करण में हैं।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
२९ कपाटान् बधान।	किवाड़ें बन्द कर।
३० इदानीं प्रातःकालो जातः कपाटानुद्घाटय।	इस समय सवेरा हुआ किवाड़ें खोलो।
३१ सर्वे युद्धाय सज्जा भवन्तु।	सब सिपाही लोग लड़ाई के लिये तैयार हों।
३२ अर्थिप्रत्यर्थिनौ राजगृहे युध्येते।	मुद्दई और मुद्दालेह कचहरी में लड़ते हैं।
३३ किमियं गोधूमान् पिनष्टि?	क्या यह गेहुओं को पीसती है?
३४ कुतोऽद्य दुर्गे शतघ्न्यश्चलन्ति?	क्यों आज किले में तोपें छूटती हैं?
३५ तेन भुशुण्ड्या सिंहो हतः।	उसने बन्दूक से सिंह को मारा।
३६ तेनाऽसिना तस्य शिरश्छिन्नम्।	उसने तलवार से उसका शिर काट डाला।
३७ अञ्जनं किमर्थमनक्षि?	अञ्जन किसलिये लगाता है?
३८ दृष्टिवृद्धये।[१]	[दृष्टि बढ़ाने के लिये।[१]]
३९ उपानहौ धृत्वा क्व गच्छसि?	जूते पहिन कर कहां जाता है?
४० जङ्गलम्।	जङ्गल को।
४१ किं स्थाल्यामोदनं पचसि सूपं वा?	क्या बटुवे में भात पकाता है, वा दाल?
४२ कटाहे शाकं पच।	कड़ाही में तरकारी पका।
४३ विरुद्धं वदिष्यसि चेत्तर्हि ते दन्तांस्त्रोटयिष्यामि।	विरुद्ध बोलेगा तो तेरे दाँत तोड़ डालूँगा।
४४ तव पितुस्तु सामर्थ्यं नाभूत् तव तु का कथा।	तेरे बाप का तो सामर्थ्य न हुआ, अब तेरी तो क्या बात है।
४५ येन प्रजा पाल्यते स कथन्न स्वर्गं गच्छेत्।	जिसने प्रजा का पालन किया, वह स्वर्ग को क्यों न जाय?
४६ यो राज्यं पीडयेत्स कुतो न नरके मज्जेत्?	जो राज्य को दुःख देवे, वह नरक को क्यों न जाय?
४७ येनेश्वर उपास्यते तस्य विज्ञानं कुतो न वर्द्धेत।	जो ईश्वर की उपासना करे, उसका विज्ञान क्यों न बढ़े।
४८ यः परोपकारी स सततं कथं न सुखी	जो परोपकारी है वह सर्वदा सुखी क्यों

१. मूल में यह भाषार्थ नहीं है। —सम्पादक

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
भवेत्।	न होवे?
४९ अस्यां मञ्जूषायां किमस्ति?	इस संदूक में क्या है?
५० वस्त्रधने।	कपड़ा और धन।
५१ इदानीमपि कुम्भ्यां धान्यं वर्त्तते न वा?	अब कोठी में अन्न है वा नहीं?
५२ स्वल्पमस्ति।	थोड़ा सा है।
५३ त्वमालसी तिष्ठसि कुतो नोद्योगं करोषि?	तू आलसी रहता है, उद्योग क्यों नहीं करता?
५४ उभयत्र प्रकाशाय देहल्यां दीपं निधेहि।	दोनों ओर उजियाला होने के लिये दरवाजे पर दिया धर।
५५ तेन चर्मासिभ्यां शतेन सह युद्धं कृतम्।	उसने ढाल और तलवार से सौ पुरुषों के साथ युद्ध किया।
५६ अतिथीन् सेवयसि न वा?	अतिथि=संन्यासियों की सेवा करता है वा नहीं?
५७ प्रेक्षासमाजं मा गच्छ।	कभी मेले-तमाशे में मत जा।
५८ द्यूतसमाह्वयौ नैव सेवनीयौ।	जो अप्राणी=जड़ पदार्थों को दाव पर धर के खेलना वह द्यूत, और प्राणी=चेतन पदार्थों को दाव पर धरके खेलना समाह्वय कहाता है। उनको कभी न करना चाहिये।
५९ यो मद्यपोऽस्ति तस्य बुद्धिः कुतो न ह्रसेत्?	जो मद्य पीनेवाला है, उसकी बुद्धि क्यों न कमती होवे।
६० यो व्यभिचरेत् स रुग्णः कथं न जायेत।	जो व्यभिचार करे वह रोगी क्यों न होवे।
६१ यो जितेन्द्रियस्स सर्वं कर्त्तुं कुतो न शक्नुयात्?	जो जितेन्द्रिय है वह सब उत्तम काम क्यों न कर सके?
६२ योगाभ्यासः कृतो येन ज्ञानदीप्ति-र्भवेन्नरः।	जिसने योग का अभ्यास किया है वह ज्ञानप्रकाश से युक्त होता है।
६३ वस्त्रपूतं जलं पेयं मनः पूतं समाचरेत्।	जो कपड़े से छान कर जल पीता और मन जिसमें प्रसन्न रहे उसी कर्म को करता

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
[स भ्रान्तौ कदापि न पतेत् ?][1]	है, वह भ्रमजाल में कभी नहीं गिरता।[2]
६४ अयं वाचालोऽस्त्यतो बरबरायते।	यह बोलने में वाचाल है इसी कारण बड़बड़ाता है।
६५ भूमितले किमस्ति ?	भूमि के नीचे क्या है ?
६६ मनुष्यादयः।	मनुष्यादि।
६७ यः पद्भ्यां भ्रमति तस्यारोग्यं जायते।	जो पग से चलता है उसको आरोग्य रहता है।
६८ व्यजनेन वायुं कुरु।	पंखा से हवा कर।
६९ किं घर्मादागतो यत् स्वेदो जातोऽस्ति[1]।	क्या घाम से आया है जो पसीना हो रहा है ?[1]
७० स्वस्थे शरीरे नित्यं स्नात्वा मितं भोक्तव्यम्।	अच्छे शरीर में रोज नहा के थोड़ा-सा खाना चाहिये कि जितना पच जाये।
७१ जलवायू शुद्धौ सेवनीयौ।	पवित्र जल और वायु का सेवन करना चाहिये।
७२ सर्वर्तुके शुद्धे गृहे निवसनीयम्।	जो सब ऋतुओं में सुख देनेहारा घर हो उसी में रहना चाहिये।
७३ नैव केनचिन्मलिनानि वस्त्राणि धार्याणि।	किसी को भी मैला कपड़ा पहिनना न चाहिये।
७४ तव का चिकीर्षास्ति ?	तेरी क्या करने की इच्छा है ?
७५ गृहं गत्वा भोक्तुम्।	घर पर जाके खाने की।
७६ त्वं सक्तून् भुङ्क्षे न वा ?	तू सत्तू खाता है वा नहीं ?
७७ घृतदुग्धमिष्टैः सहाऽद्मि।[3]	घी, दूध और मीठा के साथ खाता हूँ।[3]
७८ त्वयाम्रफलानि चूषितानि न वा ?	तूने आम के फलों को चूसा वा नहीं ?
७९ उर्वारुकफलान्यत्र मधुराणि जायन्ते।	खरबूजे के फल यहां मीठे होते हैं।

---

१. यह वाक्य मूल और प्रथम संस्करण में नहीं है बाद के संस्करणों में बढ़ाया है।
२. यह वाक्य प्रथम संस्करण में है।
३. यह वाक्य मूल में नहीं है, प्रथम संस्करण में है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
८० इक्षुभ्यो गुडादिकं निष्पद्यते।	ऊख से गुड़ इत्यादि बनता है।
८१ इदानीमाकण्ठं दुग्धं पीतं मया।	इस समय गले तक मैंने दूध पिया।
८२ तक्रं देहि।	मट्ठा दे।
८३ दुग्धं पिब[१]।	दूध पी।[१]
८४ अत्र श्वेता शर्करा वर्तते।	यहां सफेद चीनी है।
८५ अयं रुच्या दध्नौदनं भुङ्क्ते।	यह प्रीति से दही के साथ भात खाता है।
८६ अद्य मोदका भुक्ता न वा?	आज लड्डू खाये वा नहीं?
८७ त्वया कदाचित्कृशराऽपि भुक्ता न वा?	तूने कभी खिचड़ी भी खाई है वा नहीं?
८८ मयाऽपूपा भक्षिताः।	मैंने मालपूये खाये हैं।
८९ सशर्करं दुग्धं पेयम्।	शक्कर के सहित दूध पीना चाहिये।
९० येन धर्मः सेव्यते स एव सुखी जायते।	जो धर्म्म का सेवन करता है वही सुखी रहता है।

५१. लेख्यलेखकप्रकरणम्

१	मनुष्यो लेखाभ्यासं सम्यक् कुर्यात्।	मनुष्य लिखने का अभ्यास अच्छे प्रकार करे।
२	अयमनुत्तममक्षरविन्यासं करोति।	यह अत्युत्तम अक्षर लिखता है।
३	लेखनीं सम्पादय।	कलम बना।
४	मसीपात्रमानय।	दवात ला।
५	पुस्तकं लिख।	पोथी लिख।
६	तत्र पत्रं लिखित्वा प्रेषितं न वा?	वहां चिट्ठी लिखकर भेजी वा नहीं?
७	प्रेषितं पञ्च दिनानि व्यतीतानि तस्य प्रत्युत्तरमप्यागतम्।	भेजी, पांच दिन बीते, उसका जवाब भी आ गया।
८	सुवर्णाक्षराणि लिखितुं जानासि न वा?	सुनहरी अक्षर लिखने जानता है वा नहीं?
९	जानामि तु परन्तु सामग्रीसम्पादने लेखे च विलम्बो भवति।	जानता तो हूँ परन्तु चीज इकट्ठी करने और लिखने में देर होती है।
१०	यद्यंगुष्ठतर्जनीभ्यां लेखनीं गृहीत्वा	जो अंगूठा तर्जनी अंगुली से कलम को

१. यह वाक्य मूल में है, प्रथम संस्करण में नहीं है।

संस्कृतपाठः	भाषार्थ
मध्यमोपरि संस्थाप्य लिखेत्तर्हि प्रशस्तो लेखो जायेत।	पकड़कर बीचली अंगुली पर रख कर लिखे तो बहुत अच्छा लेख होवे।
११ अयमतीव शीघ्रं लिखति।	यह अत्यन्त जलदी लिखता है।
१२ एतस्य लेखनी मन्दा चलति।	इसकी कलम धीरे चलती है।
१३ यदि त्वमेकाहं सततं लिखेस्तर्हि कियतः श्लोकांल्लिखितुं शक्नुयाः?	यदि तू एक दिन निरन्तर लिखे तो कितने श्लोक लिख सके?
१४ पञ्चशतानि।	पांच सौ।
१५ यदि शिक्षां गृहीत्वा शनैः शनैर्लिखितुमभ्यस्येत्तर्ह्यक्षराणां सुन्दरं स्वरूपं स्पष्टता च जायते।	यदि शिक्षा ग्रहण कर के धीरे-धीरे लिखने का अभ्यास करे तो अक्षरों का दिव्यस्वरूप और स्पष्टता होवे।
१६ अस्मिंल्लाक्षारसे कज्जलं सम्मिलितं न वा?	इस लाख के रस में कज्जल मिला है वा नहीं?
१७ मिलितं तु न्यूनं खलु वर्त्तते।	मिला तो है परन्तु थोड़ा है।
१८ मनुष्यैर्यादृशः पठनाभ्यासः क्रियेत तादृश एव लेखनाभ्यासोऽपि कर्त्तव्यः।	मनुष्य लोग जैसा पढ़ने का अभ्यास करें वैसा ही लिखने का भी अभ्यास करना चाहिये।
१९ मया वेदपुस्तकं लेखयितव्यमस्त्येकेन रूप्येण कियतः श्लोकान् दास्यसि?	मुझे वेद का पुस्तक लिखाना है, एक रुपैया से कितने श्लोक देगा?
२० अत्युत्तमानि ग्रहीष्यसि चेत्तर्हि शतत्रयं मध्यमानि चेच्छतपञ्चकम्, साधारणानि चेत्सहस्रं श्लोकान् दास्यामि।	जो बहुत अच्छे लोगे तो तीन सौ और मध्यम लोगे तो पांच सौ। यदि बहुत साधारण वा घटिया लोगे तो हजार श्लोक दूंगा।
२१ शतत्रयमेव ग्रहीष्यामि परन्त्वत्युत्तमं लिखित्वा दास्यसि चेत्।	तीन सौ ही लूंगा परन्तु बहुत अच्छा लिख कर देगा तो।
२२ वरमेवमेव करिष्यामि।	अच्छा, ऐसा ही करूंगा।

५२. मन्तव्यामन्तव्यप्रकरणम्[१]

	संस्कृतपाठः	भाषार्थ
१	**त्वं जगत्स्रष्टारं सच्चिदानन्दस्वरूपं परमेश्वरं मन्यसे न वा ?**	तू इस संसार के बनानेवाले सत्, चित् और आनन्दस्वरूप परमेश्वर को मानता है वा नहीं ?
२	**अयं नास्तिकत्वात् स्वभावात् सृष्ट्युत्पत्तिं मत्वेश्वरं न स्वीकरोति।**	यह मनुष्य नास्तिक होने से स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति को मानकर ईश्वर को नहीं मानता।
३	**यद्ययं कर्तृकार्यरचकरचनाविशेषान् संसारे निश्चिनुयात्तर्ह्यवश्यं परमात्मानं मन्येत।**	जो यह नास्तिक कर्त्ता क्रिया बनानेहारा और बनावट को इस जगत् में निश्चय करे तो अवश्य ईश्वर को माने।
४	**अत्र सृष्टौ रचितरचनादर्शनाज्जीवकार्य्यवत् [सृष्टेः] स्रष्टारं कुतो न मन्येत ?**	जो इस सृष्टि में बने हुए पदार्थ और इनमें बनावट को प्रत्यक्ष देखता है वह जैसा कारीगरी को देख के कारीगर का निश्चय करते हैं वैसे जगत् के बनानेवाले परमात्मा को क्यों न माने ?
५	**यत्रोत्तमा धार्मिका आस्तिका विद्वांसोऽध्यापका उपदेष्टारः स्युस्तत्र कोऽपि कदाचिन्नास्तिको भवितुं नैवार्हेत्।**	जहां श्रेष्ठ, धर्मात्मा, आस्तिक, विद्वान् लोग पढ़ानेवाले और उपदेशक हों, वहां कोई भी मनुष्य नास्तिक होने को प्रवृत्त कभी नहीं होता।
६	**कैः कर्मभिर्मुक्तिर्भवति तदा क्व वसन्ति तत्र किं भुञ्जते ?**	किन कर्मों से मुक्ति होती है, उस समय कहां वास करते हैं और वहां क्या भोगते हैं ?
७	**धर्म्यैः कर्मोपासनाविज्ञानैर्मुक्तिर्जायते, तदानीं ब्रह्मणि निवसन्ति परमानन्दं च सेवन्ते।**	धर्मयुक्त कर्म, उपासना और विज्ञान से मोक्ष होता है, उस समय ब्रह्म में मुक्त जीव रहते और परम आनन्द का सेवन करते हैं।
८	**मोक्षं प्राप्य तत्र सदा वसन्त्याहोस्वित्**	जो जीव मुक्ति को प्राप्त होते हैं वे वहाँ

१. यह प्रकरण मूलपाण्डुलिपि में नहीं है, प्रथम संस्करण में है।

कदापि ततो निवृत्य पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति ?

सदा रहते हैं अथवा वहां से निवृत्त होकर पुनः जन्म और मरण को प्राप्त होते हैं?

९ **प्राप्तमोक्षा जीवास्तत्र सर्वदा न वसन्ति, किन्तु महाकल्पपर्यन्तमर्थाद् ब्राह्ममायुर्यावत्तावत्तत्रोषित्वाऽऽनन्दं भुक्त्वा पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्त्येव।**

जो जीव मुक्त होते हैं वे सर्वदा वहां नहीं रहते, किन्तु जितना ब्राह्म कल्प का परिमाण है उतने समय तक ब्रह्म में वास कर आनन्द भोग के फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः संस्कृतवाक्यप्रबोधनामको निबन्धः समाप्तः॥

प्रथम परिशिष्ट

[संस्कृतवाक्यप्रबोध के सम्बन्ध में श्री पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अबोधनिवारण पुस्तक की रचना की थी। उसमें संस्कृतवाक्यप्रबोध पर आक्षेप किया था, जिसका उत्तर ऋषि दयानन्द ने लिखवाकर एक पण्डित के नाम से आर्यदर्पण मई १८८० के पृष्ठ १२० पर प्रकाशित कराया था। वह समाधान नीचे दिया जा रहा है।]

१—येन शरीराच्छ्रमो न क्रियते स नैव शरीरसुखमवाप्नोति।

पृ० ७। पं० १॥

यहां पण्डित अम्बिकादत्तजी लिखते हैं कि (शरीरात्) इस पद में पञ्चमी विभक्ति अशुद्ध है किन्तु (शरीरेण) ऐसा चाहिये। सो यह सन्देह कारक-व्यवस्था को ठीक-ठीक नहीं विचारने से हुआ है। देखो श्रम कहते हैं पुरुषार्थ करने को। उसका कर्त्ता जीवात्मा और शरीर आश्रय रहता है। क्योंकि **चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्।** चेष्टा अर्थात् क्रिया का जो आश्रय है उसको शरीर कहते हैं। सो यहां **पञ्चमी विधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युप-संख्यानम्।** अ० २।३।२८॥ इस वार्तिक से (आश्रित्य) इस ल्यबन्त क्रिया के लोप में पञ्मी विभक्ति हुई है। देखो, ऐसा वाक्यार्थ होगा। **येन पुरुषेण शरीरमाश्रित्य श्रमो न क्रियते**-इत्यादि। जो कहो कि ऐसा अर्थ भाषा में क्यों न किया तो संस्कृत के एक वाक्य का व्याख्यान भाषा में कई प्रकार से कर सकते हैं इसमें कुछ विवाद नहीं है। परन्तु यहां तो प्रयोजन यही है कि भाषा सुगम और थोड़ी हो ऐसा उल्था करना चाहिये। अब पण्डितजी के कहने से तो **प्रासादात्प्रेक्षते** इत्यादि महाभाष्यकार के प्रयोगों में भी पञ्चमी विभक्ति नहीं होनी चाहिये। और भी पण्डितजी क्या लिखते हैं कि **विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्।** अ० २।३।२५॥ भला इसका यहाँ क्या प्रसंग था? सो जब स्वामीजी के मुख्य अभिप्राय को पण्डितजी न समझे तो जो सूत्र सामने आया लिख बैठे। भला शरीर शब्द को कोई थोड़ी विद्यावाला भी गुणवाचक कह सकता है कि जिससे गुणवाची मान के पञ्चमी विभक्ति हो जावे। और कारक विषय में ऐसा भी नियम है कि-**कारकं चेद्विजानीयाद्यां यां मन्येत सा भवेत्।** महाभाष्य १। ४। ५१॥ अर्थात् यह शब्द क्रिया के किस अंश को सिद्ध करता है ऐसे क्रियासाधक

कारक को जान के जिस-जिस विभक्ति से वह अर्थ प्रतीत हो सके वह विभक्ति हो जाती है। इन गूढ़ बातों को समझना सबका काम नहीं है॥१॥

२—चक्रवर्तिशब्दस्य कः पदार्थः ? पृ० ११ पं० ५॥

यहां पण्डितजी लिखते हैं कि चक्रवर्ति शब्द का क्या अर्थ है इसकी संस्कृत यही होगी। इनको भाषा का भी बोध है जैसा विदित हो गया। भला संस्कृत शब्द को स्त्रीलिंग पण्डितजी ने किस व्याकरण से किया। यह संस्कृत प्राचीन ऋषि-मुनियों के अनुकूल है, इसमें कुछ दोष नहीं। देखो, महाभाष्य में लिखा है कि **अथ सिद्धशब्दस्य कः पदार्थः ?** अ० १। पाद ११। आह्निक १॥ इसका क्या यह अर्थ नहीं है कि सिद्ध शब्द का क्या अर्थ है ? बड़े आश्चर्य की बात है कि प्राचीन ग्रन्थों को विना देखे दोष देने लगते हैं। अब पण्डितजी का लगाया दोष कुछ स्वामीजी को ही लगा हो सो नहीं किन्तु इन्होंने तो सब ऋषि-मुनियों को दोष लगा दिया और **सापेक्षमसमर्थं भवतीति।** महाभाष्य २। १। १॥ यह दोष यहाँ कभी नहीं आता क्योंकि यहां एक देश के साथ अन्वय नहीं है। और इसी प्रकार **सभा शब्दस्य कः पदार्थः** ? इसको शुद्ध समझ लेना॥२॥

३—अस्मिन् समये तु मम सामर्थ्यं नास्ति षण्मासानन्तरं दास्यामि।

(महा० २। १। १) पृ० १९। २४॥

यहां 'षण्मास' शब्द में पण्डितजी को सन्देह हुआ है कि यहाँ **द्विगोः।** अष्टा० ४। १। २१॥ इस सूत्र से ङीप् होके षण्मासी शुद्ध होता है। इस भ्रम का मूल यही है कि उनको व्याकरण के सब सूत्र विदित नहीं हैं। पण्डितजी के कथनानुसार यदि स्वामीजी का लेख अशुद्ध भी माना जावे तो फिर पाणिनि मुनि का सूत्र भी अशुद्ध मानना चाहिये। सू० **षण्मासाण्यच्च।** अ० ५। १। ८३॥ यहां पण्डितजी के मतानुसार षण्मास्याण्यच्च इस प्रकार का सूत्र होना चाहिये। अब देखिये पाणिनीय सूत्र को यदि पण्डितजी जानते होते तो स्वामीजी के लेख को मिथ्या दोष क्यों लगाते और छोटे-छोटे बालक कि जो अष्टाध्यायी के सूत्र भी घोखते हैं वे भी जानते हैं कि यह सूत्र ऐसा है। इस प्रकार के बहुत से प्रयोग व्याकरण आदि शिष्ट जनों के ग्रन्थों में आते हैं तो क्या सब अशुद्ध हैं ? अब रहा कि ङीप् क्यों नहीं होता तो **पात्रादिभ्यः प्रतिषेधः।** महा० २/४/१७॥ यह वार्तिक इसीलिये है। पात्रादि आकृतिगण है। इसका परिगणन कहीं नहीं किया कि इतने ही पात्रादि शब्द हैं। महाभाष्यकार

ने तो इस वार्तिक पर उदाहरण मात्र दिया है। अब इसी प्रकार '**द्विवर्षानन्तरम्**' इसको भी शुद्ध समझ लेना चाहिये। पाणिनिजी महाराज ने अपने सूत्र में '**षण्मास**' शब्द को पढ़ा है। इससे यह भी उनका उपदेश प्रसिद्ध विदित होता है कि '**षण्मास**' आदि शब्दों में ङीप् कदापि नहीं होता और कोई किया चाहे तो अशुद्ध ही है॥ ३॥

४—संस्कृतवाक्यप्रबोध में रही एक अशुद्धि का संशोधन अशुद्धि के निर्देशक श्री बारहट किशनजी के पत्र के उत्तर में महर्षि दयानन्द द्वारा लिखे गये चैत्र कृष्ण १० सोमवार संवत् १९३९ के पत्र में इस प्रकार लिखा है—

बारहट श्री कृशनजी आनन्दित रहो।

विदित हो कि पत्र आपका आया समाचार विदित हुए। संस्कृत वाक्य प्रबोध के विषय में जो तुमने लिखा सो छापे वालों की भूल में छप गया है। वहाँ **(एकत्रैकाङ्गुष्ठ एकत्र चतुरङ्गुलयः)** ऐसा चाहिये, सो सुधार लीजिये।

पत्र व्यवहार पृष्ठ ४०१

संस्कृत वाक्य प्रबोध में रही अशुद्धियों के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द द्वारा मुंशी बखतावर सिंह जो श्रा० शु० १३ बुध सं० १९३७ (सन् १८ अगस्त १८८०) को लिखे गये पत्र का निम्नलिखित अंश बहुत महत्त्वपूर्ण है—

''जो संस्कतवाक्यप्रबोध पर पुस्तक छपाया है सो बहुत ठिकानों में उनका लेख अशुद्ध है। और कै एक ठिकानों में संस्कृत वाक्य प्रबोध में अशुद्ध भी छपा है। इस अशुद्धि के कारण तीन हैं। एक शीघ्र बनना, मेरा चित्त स्वस्थ न होना। दूसरा भीमसेन के आधीन शोधने का होना और मेरा न देखना न प्रूफ को शोधना। तीसरा छापेखाने में उस समय कोई कम्पोजीटर बुद्धिमान् न होना, लैंपों की न्यूनता होना। इसके उत्तर में जो-जो उनकी सच्ची बात है सो-सो शोधक और छापा का दोष रहेगा। इसके खंडन पर भीमसेन का नाम मत लिखना, किन्तु पंडित ज्वालादत्त के नाम से छापना। इस पर आगे के आर्य्यदर्पण में छापने के लिये पं० ज्वा० भी लिखेगा। भीमसेन भी लिखो, परन्तु उसका नाम उसपर छपवाने से उसके पढ़ने में वहाँ के लोग बहुत विरोध करेंगे।''

द्वितीय परिशिष्ट

अबोधनिवारण के अवशिष्ट आक्षेपों का उत्तर

लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक

पं० अम्बिकादत्त व्यास द्वारा ''अबोध निवारण'' में उपस्थापित सभी आपेक्षों का क्रमशः उत्तर दिया जाता है—

१—(आक्षेप) पृष्ठ १५ पंक्ति २[१]—

(शाकमानयनाय) प्रश्न तो यह है कि ''स क्व गतः'' और उत्तर **शाकमानयनाय**—भला यह भी क्या छापे वाले की ही अशुद्धि है? कदाचित् स्वामी जी ने शाकमानेतुम् लिखा हो और उसी को उसने बढ़ा के **शाकमानयनाय** बना लिया हो क्या इसका कोई भी विश्वास करेगा? यहां ''**कर्तृकर्मणोः कृति**'' २.३.६५ इस सूत्र से '**शाकस्यानयनाय**' होना चाहिए॥

समाधान—इस विषय में प्रथम हम निरुक्तकार का ऐसा पाठ उद्धृत करते हैं, जिसमें **शाकमानयनाय** के समान ही प्रयोग किया है—

ततो वयः प्रपतान् पूरुषादः.....ततो वयः प्रपतन्ति पुरुषान् अदनाय।

निरुक्त २.६॥

यहां भी **अदनाय** ल्युडन्त कृदन्त के योग में षष्ठी का प्रयोग न करके द्वितीया का प्रयोग किया है। जो कि **शाकमानयनाय** के ठीक अनुरूप है। यदि महर्षि दयानन्द का प्रयोग अशुद्ध है तो निरुक्तकार यास्काचार्य का भी **पुरुषान् अदनाय** प्रयोग अशुद्ध मानना होगा।

स्वयं सूत्रकार पाणिनि ने भी **तद् अर्हम्** (५.१.११७) सूत्र में **अर्हम्** कृत् के योग में **तद्** द्वितीयान्त पद का ही निर्देश किया है। यदि सूत्रकार का प्रयोग भी अशुद्ध माना जाए तो **घोटकारूढस्य घोटकविस्मृतिः** न्याय सूत्रकार के विषय में चरितार्थ होगा। सूत्रकार दूसरों को तो साधु प्रयोग का ज्ञान कराने के लिये शास्त्र बनावे और स्वयं अशुद्ध प्रयोग करे, ऐसी कल्पना भला कौन सचेतस्क पुरुष कर सकता है।

---

१. पृष्ठ और पङ्क्ति की संख्या का का निर्देश प्रथम संस्करण के अनुसार है। इस संस्करण में पृष्ठ २५९ पर गमनागमनप्रकरण १ की संख्या ६ पर यह पाठ है।

अब हम व्याकरण शास्त्र के अनुसार **शाकमानयनाय, पुरुषान् अदनाय** प्रयोगों का साधुत्व दर्शाते हैं—

वैयाकरणों का मत है कि **षष्ठी शेषे** (अ० २.३.५०) सूत्रस्थ शेष की अनुवृत्ति आपादपरिसमाप्ति जाती है। इस अनुवृत्ति से जब **कर्तृकर्मणोः कृति** (अ० २.३.६५) सूत्र में कर्तृ-कर्म के शेषत्व की विवक्षा होगी तभी कर्तृ-कर्म में षष्ठी होगी। शेषत्व की विवक्षा न होने से कर्म में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होगा।

दुर्घटवृत्तिकार ने भी **रक्षोगणक्षिप्नुमबिक्षतात्मा** तथा **धायैरामोद-मुत्तमम्** प्रयोगों में कृत् योग में कर्म में प्रयुक्त द्वितीया की उपपत्ति के लिये **तदर्हम्** (अ० ५.२.११७) के ज्ञापक के **कर्तृकर्मणोः कृति** (अ० २.३.६५) के नियम की अनित्यता ज्ञापित की है। द्रष्टव्य दुर्घटवृत्ति (अ० २.३.६५)॥

इस विवेचना से स्पष्ट है कि अम्बिकादत्त व्यास को न प्राचीन शिष्ट प्रयोगों का ज्ञान है और न आधुनिक काव्य ग्रन्थों का। व्याकरण ज्ञान में तो वह सर्वथा शून्य है यह ऋषि दयानन्द सरस्वती के द्वारा समाहित षण्मास शब्द के समाधान तथा हमारी इस विवेचना से अत्यन्त स्पष्ट है। ऐसा ही अपने अवैयाकरणत्व अथवा वैयाकरणखसूचीत्व का प्रदर्शन सर्वत्र किया है।

२—(आक्षेप) पृ० १८ पंक्ति २[२]—**(अस्मिन् समये तु मम सामर्थ्यं नास्ति षण्मासानन्तरं दास्यामि)** इस वाक्य में **''षण्मासानन्तरं''** के स्थान में **षण्मास्यनन्तरं** होना चाहिए क्योंकि **''द्विगोः''** सूत्र से **षण्मासी** सिद्ध होगा न कि **षण्मास।** और **पात्रादि गण** में **षण्मास** शब्द का पाठ ही नहीं है जिसमें पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम् इत्यादि की तरह से सिद्ध हो॥

समाधान—इस आक्षेप का यथोचित उत्तर ऋषि दयानन्द ने **षण्मासाण्ण्यच्च** (अ० ५.३.८३) के पाणिनीय सूत्र का निर्देश करके दे दिया है। उससे स्पष्ट है कि पाणिनि के मत में **षण्मासी** प्रयोग जैसा कि पं० अम्बिकादत्त व्यास ने लिखा है, नहीं बनता।

अब हम **षण्मास** शब्द, जिसे पं० अम्बिकादत्त व्यास व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग मानते हैं, के साधुत्व प्रदर्शन के लिए प्राचीन आर्षग्रन्थों से कुछ प्रयोग उपस्थित करते हैं—

---

२. इस संस्करण में पृष्ठ २६२ पर साक्षिप्रकरण में संख्या १२ पर।

षण्मासाः—बौधायन धर्म सूत्र ३.१०.१६॥

षण्मासान्—बौधायन धर्म सूत्र २.४.८; ३.९.१७॥

षण्मासान्नित्ययुक्तस्य—महाभारत शान्ति पर्व २४०.३२॥

षण्मासे षण्मासे...। पञ्चतन्त्र, काकोलूकीय कथा ६, पं० गुरुप्रसाद संम्पादित काशी संस्करण पृष्ठ ६५७।

यद्यहं षण्मासाभ्यन्तर एव तव पुत्रान् नीतिशास्त्रं प्रत्यनन्यसदृशान् करोमि....। तन्त्राख्यायिका, पृष्ठ २।

इसी प्रकार महाभारत में अन्यत्र भी बहुत स्थानों पर पुंल्लिङ्ग **षण्मास** शब्द का प्रयोग मिलता है। हमें प्राचीन आर्ष वाङ्मय में कहीं **षण्मासी** शब्द का प्रयोग नहीं मिला। इसलिए **पात्रादि** गण में चाहे षण्मास शब्द का पाठ न हो पुनरपि सूत्रकार पाणिनि के एवं प्राचीन शिष्ट प्रयोगों से स्पष्ट है कि **षण्मास** प्रयोग ही साधु है। पं० अम्बिकादत्त व्यास का दर्शाया **षण्मासी** प्रयोग साधु नहीं है। वैयाकरण सम्प्रदाय में **पात्रादि** गण **आकृतिगण** माना जाता है। अतः साक्षात् पाठ न होने पर भी शिष्ट प्रयोगों के अनुसार **षण्मास** का प्रयोग उस में मानना चाहिए।

बौधायन धर्म सूत्र में २.९.७ में प्रयुक्त **षण्मुखम्** प्रयोग भी यहां द्रष्टव्य है।

३. (आक्षेप) पृष्ठ २१ पं० ८[३]—**(भवान् परेद्युः क्व गन्तासि)** यहां तो स्वामी जी ने बड़ा आनन्द दिखलाया क्या बात है इधर **भवान्** उधर **गन्तासि** यहां "**भवान् परेद्युः क्व गन्ता**" लिखना था।

समाधान—यह साधारण अशुद्धि है इस जैसे अशुद्ध प्रयोगों के सम्बन्ध में हमें ऋषि दयानन्द का वह पत्र ध्यान से पढ़ना चाहिए, जिसमें उन्होंने आश्विन शुक्ला १३ बुधवार सं० १९३७ के दिन प्रेस के तात्कालिक मैनेजर बख्तावरसिंह को पत्र लिखा था—

जो संस्कृतवाक्यप्रबोध पर [काशी के पण्डितों ने] पुस्तक छपवाया है सो बहुत ठिकानों उनका लेख अशुद्ध है और कै एक ठिकानों में संस्कृतवाक्य-प्रबोध में अशुद्ध भी छपा है। इस अशुद्धि

---

३. यह पाठ इस संस्करण में पृष्ठ २६५ पर गमनागमनप्रकरण २ की संख्या ७ के स्थान पर अभी तक छपता आ रहा था। परन्तु मूल में वह पाठ है जो हमने इस संस्करण में छापा है।

के कारण तीन **हैं,** एक—**शीघ्र बनना, मेरा चित्त स्वस्थ न होना,** दूसरा—**भीमसेन के आधीन शोधन का होना और मेरा न देखना न प्रूफ को शोधना,** तीसरा—**छापेखाने में उस समय कोई भी कम्पोजीटर बुद्धिमान् न होना, लैम्पों की न्यूनता होनी। इसके उत्तर में जो-जो उनकी सच्ची बात है सो-सो शोधक और छापा का दोष रहेगा।**

पत्रव्यवहार पृ० २२३[४]

इस पत्र से ऋषि दयानन्द की सत्यप्रियता एवं भूल-स्वीकृति का विद्वज्जनोचित उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। इसके अनुसार यथोचित संशोधन अगले संस्करण में कर दिया गया है।

हम दुर्जनसन्तोष न्याय से महाभारत से इस प्रकार कुछ उदाहरण भी नीचे प्रस्तुत करते हैं, जिन में संस्कृतवाक्यप्रबोध के समान ही पुरुष भेद मिलता है। यथा—

यूयं.....अपराध्येयुः। महाभारत वनपर्व २३९.१०॥

वयं.....प्रतिपेदिरे। महाभारत शान्तिपर्व ३३६.३१॥

ददृशिरे वयम्। महाभारत शान्तिपर्व ३३६.३५॥

हमारा अपना तो यही मत है कि इस प्रकार के पुरुषभेद के प्रयोग भी संस्कृत भाषा एवं व्याकरण शास्त्र के अनुसार ठीक हैं, परन्तु ऋषि ने जब इन्हें अशुद्ध मान लिया या प्रारम्भिक जनों के शिक्षण के लिए इन्हें ठीक न माना, तो इस प्रकार के शब्दों का साधुत्व दर्शाना ऋषि के प्रति न्याय नहीं कहा जा सकता। अतः हमने व्याकरण शास्त्र की रीति से इस के साधुत्व दर्शाने की चेष्टा नहीं की।

४. (आक्षेप) पृष्ठ २२ पं० ९[५]—(इदानीं शीतं **निवृत्योष्णसमय** आगतः)—इस वाक्य में **निवृत्य** की जगह **निवर्त्य** होना चाहिये। यदि यह कहो कि हम णिजन्त न रख के **निवृत्य** ही बनावेंगे तो अर्थाशुद्धि होगी। पाणिनि महर्षि कहते हैं कि **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वा'** (३.४.२१) इसलिए पूर्वोक्त वाक्य में निवृत्ति का कर्त्ता तो भया शीत, और आगमन का उष्ण इसमें यहां क्रिया की एक कर्तृकता नहीं है इसी कारण दूषित है।

---

४. यह पृष्ठ संख्या पत्र व्यवहार के प्रथम संस्करण की है।

५. इस संस्करण में पृष्ठ २६६ पर मिश्रितप्रकरण (२) की संख्या १ पर।

समाधान—यहां **शीतं निवृत्तम्** यह अभिप्राय इष्ट है, जैसा कि भाषानुवाद से स्पष्ट है। यह संशोधन भी अगले संस्करण में यथोचित कर दिया गया है। यदि पण्डित जी का कथन माना जाये तो **निवृत्य** प्रयोग भी **निवर्त्य** के स्थान में व्याकरणानुसार शुद्ध है। क्योंकि ग्रन्थकार का ऐसा भाव नहीं है। वैयाकरण सम्प्रदाय में **अन्तर्भावित ण्यर्थ** मान कर विना णिच् के भी ण्यर्थ-विशिष्ट अर्थ बहुत स्वीकार किया जाता है। वैयाकरण सम्प्रदाय में एक श्लोक प्रसिद्ध है—

वान्ति पर्णशुषो वाता वान्ति पर्णमुचोऽपरे।
ततः पर्णरुहो वान्ति ततो देवः प्रवर्षति॥

उज्ज्वलदत्तकृता उणादि टीका[६] पृष्ठ ६९।

यहां **पर्णशुष्, पर्णमुच् पर्णरुह्** शब्दों में अन्तर्भावित ण्यर्थ ही है अथवा यहां अविहित **णि** का लुक् है। इस विषय में महाभाष्य ७.४.६५ तथा उसकी टीकाएं भी द्रष्टव्य हैं। **णि** का अविहित लोप मानने की अपेक्षा अन्तर्णीत ण्यर्थ मानना अधिक सरल एवं युक्ततर है।

५. (आक्षेप) पृष्ठ २५ पं० ६[७]—**(पश्य तव मम च कीदृशानि पुष्टान्यपत्यानि द्विवर्षानन्तरं जायन्ते)** इस वाक्य में भी **''द्विगोः''** सूत्र से **द्विवर्षी** सिद्ध होगा।

समाधान—इस पद का साधुत्व पूर्व प्रदर्शित **षण्मास** शब्द के समान जानना चाहिये।

६. (आक्षेप) पृष्ठ २८ पं० १३[८]—**(त्वमद्य प्रसन्नमुखो दृश्यते किमत्र कारणम्)** क्या प्रसन्नमुख हो के स्वामी जी ने लिखा है, भला हम उनसे पूछते हें कि **त्वम्** के संग में **दृश्यते** का प्रयोग कैसे हुआ? मेरे ज्ञान में तो प्रथम जो **गन्तासि** की अशुद्धि हो गई है उसी की यहां स्वामी जी ने **दृश्यते** से पूर्त्ति करी॥

समाधान—यहां लेखक अथवा मुद्रक प्रमाद ही है। पूर्व संख्या ३

६. यह दशपादी उणादि वृत्ति पृष्ठ ३१२ पर भी उद्धृत है वहां द्वितीय चरण में 'वान्ति' के स्थान में 'ततः' पाठ है।

७. इस संस्करण के पृष्ठ २६९ पर ननन्दृभ्रातृ० प्रकरण में संख्या १० पर।

८. इस संस्करण के पृष्ठ २७२ पर शरीरावयवप्रकरण में संख्या ३०। मूलपाण्डुलिपि में पृष्ठ २६ पर 'दृश्यसे' ही पाठ है। अतः प्रथम संस्करण में मुद्रण की भूल है। —सम्पादक

के सम्बन्ध में ऋषि का पत्र जो उद्धृत किया है उसके अनुसार यहां भी पाठ शोधन अगले संस्करण में कर दिया गया है। इसके साथ ही संख्या ३ के प्रकरण में निर्दिष्ट महाभारत के वचनों से भी तुलना करनी चाहिये।

७. (आक्षेप) पृष्ठ ३२ पं० २[९]—**तत्र या धेनवस्ताभ्योऽर्धं दुग्धं त्वया दोहित्वा स्वामिभ्यो देयमर्धं च वत्सेभ्यः पाययितव्यम्)**। वाह जी स्वामी जी बालकों की शिक्षा के लिए तो पुस्तक बनाया सो ऐसी शिक्षा दी कि **दुग्ध्वा** का **दोहित्वा** सिखाया। यदि **णिजन्त** रखिये तो भी **दोहयित्वा** होगा तथापि अर्थ संगत न होगा।

समाधान—साधारण जनों की दृष्टि से इस अशुद्धि का भी अगले संस्करण में संशोधन कर दिया गया है। वस्तुतः यह प्रयोग भी **आगम-शास्त्रमनित्यम्** (परिभाषेन्दुशेखर ९४) **अनित्यमागमशासनम्** (सीरदेव परिभाषावृत्ति पृष्ठ १०१) नियम के अनुसार **इट्** सम्बन्धी विधि वा निषेध को अनित्य मानने से सिद्ध हो जाता है। ऐसे ही अनिट् धातुओं के सेट् प्रयोग अन्यत्र भी मिलते हैं। यथा—**आकर्षितस्य** (यजुर्वेद भाष्य २.१ के पदार्थ में) **आकर्षितम्** (यजुर्वेदभाष्य २.१६ के भावार्थ में), **प्रक्षेपितुम्** (यजुर्वेदभाष्य २.१ के पदार्थ में) **भजितुम्** (यजुर्वेदभाष्य २.२० के पदार्थ) आदि में मिलते हैं।

क्रियारत्नसमुच्चय (हैम धातु व्याख्या) में लिखा है—**सर्वधातूनां बहुलं वेड् इत्यन्ये** (पृ० ६६)। महाभारत शल्यपर्व ४.४९ का वचन है—

नातिक्रमिष्यते कृष्णो वचनं कौरवस्य तु।

यहां **स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते** (अष्टाध्यायी ७.२.३६) से इट् का निषेध प्राप्त है परन्तु सेट् का प्रयोग किया है।

पत्लृ धातु में **भरज्ञपिसनितनिपतिदरिद्राणाम्** (वार्तिक ७.२.४९) से इट् के विकल्प का विधान होने से **क्त** में **यस्य विभाषा** (अ० ७.२.१५) सूत्र से नित्य इट् का निषेध प्राप्त होने पर भी पाणिनि ने **द्वितीया श्रितातीतपतित०** (अ० २.१.२४) में पतित में इडागम का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि इट् के निषेध की विधि अनित्य है।

८. (आक्षेप) पृष्ठ ३२ पं० १४[१०]—**(श्रोतव्यं हरयः कीदृशं हर्षन्ति)**

---

९. इस संस्करण के पृष्ठ २७६ पर ग्राम्यपशुप्रकरण में संख्या २।

१०. इस संस्करण के पृष्ठ २७७ पर ग्राम्यपशुप्रकरण में संख्या ८।

वाह क्या बात है स्वामी जी जैसा आपका पद ज्ञान है वैसा ही आपका अर्थ ज्ञान है। **ह्रेष अव्यक्ते शब्दे** धातु का घोड़े के हिनहिनाने के अर्थ में **ह्रेषन्ते** का प्रयोग होता है सो आपने **हर्षन्ति** लिखा।

समाधान—यहां मुद्रण दोष है। अगले संस्करण में **ह्रेषन्ते** ठीक कर दिया गया है।

९. (आक्षेप) पृष्ठ ३४ पं० १८[११]—**(द्रष्टव्यं हस्तिसिंहयो रणम्)** इस वाक्य में "**येषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः**" २.४.९ इस सूत्र से नित्य एकवद्भाव होना चाहिए। अतएव **हस्तिसिंहस्य** हुआ। इसी पृष्ठ की २३ वीं पंक्ति में भी वही दशा है, **सिंहवराहयोः** लिखा है वहां भी **सिंहवराहस्य** होगा।

समाधान—येषां च विरोधः शाश्वतिकः (अ० २.४.९) में **येषाम्** बहुत्व का निर्देश होने से जहां परस्पर विरोधी बहुत प्राणियों का जातिगत विरोध द्योत्य होता है वहीं एकवद्भाव होता है, न कि व्यक्ति विशेष का विरोध द्योत्य होने पर। यद्यपि उपर्युक्त **हस्तिसिंहयोः** में निर्दिष्ट हस्ती और सिंह का स्वाभाविक वैर है, तथापि ऋषि दयानन्द के **हस्तिसिंहयोः** वचन में एक विशेष हस्ती और एक विशेष सिंह, जिनकी ओर संकेत कर के कहा जा रहा है, उन दो पशुओं के रण=युद्ध की ओर संकेत होने से यहां **हस्तिसिंहयोः** में एकवद्भाव प्राप्त ही नहीं है। अतः ग्रन्थकार का द्विवचन का निर्देश सर्वथा साधु है। पं० अम्बिकादत्त व्यास ने पाणिनि के उक्त सूत्र का रहस्य समझा ही नहीं। प्रतीत होता है पण्डित जी की गति केवल साहित्य में ही विशेष थी, उन्हें व्याकरण का विशेष ज्ञान नहीं था; अन्यथा वे ऐसा भ्रमपूर्ण आक्षेप न करते।

इसके लिये हम महाभाष्य का एक पाठ उद्धृत करते हैं। महाभाष्य १.२.३२ में लिखा है—**क्षीरोदके सम्पृक्ते आमिश्रीभूतत्वान्न ज्ञायते कियत् क्षीरं कियदुदकम् इति।** इस पर कैयट लिखता है—**नियतव्यक्ति-विवक्षायां जातिपरत्वाभावाद् एकवद्भावो न कृतः।** यही समाधान **सिंहवराहयोः हस्तिसिंहयोः** में जानना चाहिये।

१०. (आक्षेप) पृष्ठ ३४ पं० २४[१२]—**(शूकरा इक्षुक्षेत्राणि भक्षित्वा**

---

११. इस संस्करण में पृष्ठ २७८ पर वन्यपशुप्रकरण की संख्या ५।

१२. इस संस्करण में पृष्ठ २७९ पर वन्यपशुप्रकरण की संख्या १०।

विनाशयन्ति) क्या भक्ष धातु को भी आधृषीय समझ लिया, कभी लिखते हो **भक्षित्वा** और कभी **भक्षयित्वा** वाह इसी का नाम तो पाण्डित्य है। इतना भी बोध नहीं है कि सदैव ही **भक्षयित्वा** होता है अहा हा!!!

समाधान—श्री स्वामी दयानन्द ने तो **भक्ष** को आधृषीय नहीं समझा उन्होंने तो **भ्वादिगण** में पठित भक्ष का प्रयोग लिखा है। परन्तु पण्डित जी ही अपनी पढ़ी सिद्धान्त कौमुदी को भूल गये। यदि कौमुदी स्मरण होती तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि वहां **भ्लक्ष** धातु के प्रसङ्ग में **भक्ष इति मैत्रेयः** भी लिखा है।

यदि कहो कि कौमुदीकार ने तो भक्ष को मैत्रेय के नाम से पाठान्तर रूप में उद्धृत किया है तो भी उन्हें जानना चाहिए कि पाठान्तर में पठित सभी धातुओं को कौमुदीकार प्रमाण मानता है। यदि प्रमाण न मानता तो उसका खण्डन करता।

इतना ही नहीं **भक्ष** धातु का भ्वादिगण में पाठ मैत्रेय के अतिरिक्त चान्द्र कातन्त्र, शाकटायन, हैम प्रभृति अनेक व्याकरणों में माना गया है। वैदिक वाङ्मय में भक्ष धातु के भ्वादिगणानुसारी बहुत से प्रयोग उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार अनेक वैयाकरणों एवं वैदिक वाङ्मय के प्रवक्ताओं के मत में भक्ष का भ्वादिगण में निर्बाध पाठ माना गया है। अतः ऋषि दयानन्द ने भक्ष को न **आधृषीय** माना है और न उससे णिच् विकल्प किया है। ऋषि दयानन्द के **भक्षित्वा** और **भक्षयित्वा** प्रयोग क्रमशः भ्वादिगण एवं चुरादिगण पठित धातुओं के हैं। दोनों ही शुद्ध हैं।

११. (आक्षेप) पृष्ठ ३५ पंक्ति २[१३]—**(अयं रुरुर्वृषभवत् स्थूलोऽस्ति)** यहां वृषभवत् का अन्वय स्थूल संग है और ऐसे अर्थ में पाणिनीय के अनुसार कदापि **वति** प्रत्यय न होगा क्योंकि ऐसा सूत्र है कि **''तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः''** ५.१.११५ जिससे क्रिया योग में **वति** प्रत्यय होता है जैसे **ब्राह्मणवदधीते** और गुण योग में नहीं होता जैसे यह कहना सर्वथा अशुद्ध है कि **पितृवत् स्थूलः॥**

समाधान—नीति शास्त्रकारों का वचन है **प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवद् आचरेत्।** यहां भी मित्र द्रव्य है न कि क्रिया। न्यासकार ने

---

१३. इस संस्करण में पृष्ठ २७९ पर वन्यपशुप्रकरण की संख्या १२।

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ (अ० १.१.५६) की व्याख्या में वही प्रयोग किया है जिसके विषय में पण्डित जी लिखते हैं—''जैसा यह कहना अशुद्ध है कि **पितृवत् स्थूलः**''। न्यासकार का पाठ है—यथा **पितृवत् स्थूल इत्युक्ते अन्तरेणापि अत्र पुत्रग्रहणं सम्बन्धिशब्दत्वात् पुत्र इति गम्यते** (पृ० १०३, राजशाही संस्करण)। न्यासकार के इस प्रयोग में जैसे **वति** प्रत्यय होता है वैसे ही ऋषि दयानन्द के **रुरुर्वृषभवत् स्थूलः** में समझना चाहिये।

दुर्घटवृत्तिकार ने **पितृवत् स्थूलः पुत्रः** की व्याख्या में लिखा है—**स्थूलशब्दोऽयं धर्मप्राधान्यात् स्थौल्यवृत्तिः। एवं च 'तत्र तस्येव'** (अ० ५.१.११६) इति **वतिः।.....पितरि यत्स्थौल्यं तत् पुत्र इत्यर्थः। यद्वा स्थूल इति विशेषणेन हेतुनिर्देशः। स्थौल्याद्धेतोर्गमनादिना पित्रा तुल्य इति।** अ० ५.१.११५॥

अर्थात् **पितृवत् स्थूलः पुत्रः** में स्थूल शब्द धर्म (स्थूलता) प्रधान स्थौल्यार्थक है अतः यहां **तत्र तस्येव** (पा० ५.१.११६) से **वति** होता है। पिता में जो स्थौल्य है वही पुत्र में है यह वाक्यार्थ है। अथवा स्थूल यह विशेषण रूप से हेतु निर्देशक है। स्थौल्य के हेतु से जैसा पिता का गमनादि होता है वैसा ही पुत्र का है।

यही दोनों वाक्यार्थ ऋषि दयानन्द के वाक्य में भी अभिप्रेत हैं। एक अभिप्राय होगा—जैसे वृषभ में स्थूलता है वैसी ही **रुरु** में भी है। दूसरा अभिप्राय होगा—जैसे स्थूलताहेतुक **वृषभ** की गमनादि क्रिया होती है वैसी ही **रुरु** की भी है।

ऊपर के प्रमाण से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द का **अयं रुरुर्वृषभवत् स्थूलः** सर्वथा शुद्ध है। वाक्यार्थ बोध न होने से अथवा संस्कृत वाक्य विन्यास की शिष्ट शैली का ज्ञान न होने से पण्डित जी को भ्रान्ति हुई है।

१२. (आक्षेप) पृष्ठ ३६ पं० १५[१४]—''**पश्याहिनकुलयोः संग्रामो वर्तते**'' यह वैसी ही अशुद्धि है जैसी हम पहिले ३४ पृष्ठ की १८ पंक्ति में लिख चुके हैं।

समाधान—इसी प्रकार के प्रयोग का उत्तर हम आक्षेप ९ के उत्तर में दे चुके हैं।

---

१४. इस संस्करण में पृष्ठ २८० पर तिर्यग्जन्तुप्रकरण की संख्या ४।

१३. (आक्षेप) पृष्ठ ३६ पं० १९[१५]—''**मक्षिकां भक्षित्वा वमनं प्रजायते**'' पुनः वही अशुद्धि है जो ३४ पृष्ठ में है। इससे निश्चय होता हे कि यह छापे की भूल नहीं है परन्तु स्वामी जी का ज्ञान ही ऐसा है।

समाधान—यही आक्षेप संख्या १० में भी किया है अतः इसका समाधान भी उसी के समान है।

१४. (आक्षेप) पृष्ठ ३८ पं० १३[१६]—''**भोस्तक्षन्.....रचित्वा दीयन्ताम्**'' भला **रचित्वा** कैसे हुआ? क्या **आधृषीय** में इसका पाठ है? न होगा तो चिन्ता क्या है, स्वामी जी कह देंगे कि तुम क्या जानों।

समाधान—इसे अगले संस्करण में ठीक कर दिया गया है।

१५. (आक्षेप) पृष्ठ ४१ पं० २२[१७]—''**विक्रीणामि**'' वाह वाह अलौकिक पाण्डित्य है। स्वामी जी ने **क्री** धातु को **ञित्** समझ के धड़ाके से **विक्रीणामि** लिख मारा। ये तो ''विद्वान्'' हैं इनको किस बात का डर है। ''**परिव्यवेभ्यः क्रियः**'' १.३.१८। पाणिनि जी के इस सूत्रानुसार **विक्रीणे** होना चाहिए और कदापि परस्मैपद न होगा।

समाधान—स्वामी जी तो विद्वान् न सही, परन्तु पण्डित जी तो अपने आप को विद्वान् मानते हैं, फिर भी पण्डित जी अपने अज्ञान को नहीं देखते पाणिनि का सूत्र है—**परिव्यवेभ्यः क्रियः** (अ० १.३.१८) यहां **परि-वि-अव** उपसर्गों का द्वन्द्व समास है। **अल्पाच्तरम्** (अ० २.२.३८) के नियम से 'वि' का पूर्व प्रयोग होना चाहिए। क्या पाणिनि भी यहां उक्त नियम को भूल गया? परन्तु बात ऐसी नहीं है। पाणिनि ने पूर्वनिपात नियम का व्यभिचार करके ज्ञापन किया है कि प्रकृत प्रकरणस्थ आत्मनेपद विधान अनित्य है (वैयाकरण अन्य स्थानों पर पूर्वनिपात नियम के व्यभिचार को ज्ञापक मानते हैं) अतः **विक्रीणामि** प्रयोग भी साधु है। क्रयविक्रयप्रकरण में **विक्रीणीते** प्रयोग भी मिलता है।

१६. (आक्षेप) पृष्ठ ४४ पं० १५[१८]—**(कपाटान् बध्नीहि)** ठीक है ठीक है, बहुत शुद्ध बोलें, किस व्याकरण से **बध्नीहि** साधा?॥ इतनी भी बुद्धि नहीं और शंकराचार्य बनने चले, दूसरों को कहते हैं कि अज्ञ

---

१५. इस संस्करण में पृष्ठ २८० पर तिर्यग्जन्तुप्रकरण संख्या ८।
१६. इस संस्करण में पृष्ठ २८४ पर कारुप्रकरण संख्या १।
१७. इस संस्करण में पृष्ठ २८५ पर अयस्कारप्रकरण संख्या ४।
१८. इस संस्करण में पृष्ठ २८८ पर मिश्रितप्रकरण (३) की संख्या २९।

है और बोध नहीं है, आप ही को तो बड़ा बोध है॥ इसी विद्या और पाण्डित्य पर राजा शिवप्रसाद जी की निन्दा करते हो। आप को तो "**हलः श्नः शानज्झौ**" ३.१.८३ भी याद नहीं, बालकपन में क्या करते रहे? धातुरूपावली पढ़ी? यदि पढ़ते तो स्पष्ट ज्ञान होता कि **बधान** रूप होता है। कोई वैदिक प्रयोग तो नहीं याद पड़ा जो इस झोंक में ऐसा लिख गये?

समाधान—अगले संस्करण में इसे शुद्ध कर दिया है। वैसे '**बध्नीहि गां तात**' इत्यादि प्रयोगों में क्वचित् **शानच्** का अभाव देखा जाता है। **व्यत्ययो बहुलम्** (अ० ३.१.८५) का **बहुलम्** योगविभाग करके समस्त विकरण प्रत्ययों का व्यतिगमन होता है। इस कारण आर्ष प्रयोगों में बहुधा दृष्टविकरण प्रत्यय साधु माना जाता है।

रही राजा शिवप्रसाद ही की बात, उसके लिए राजा जी के निवेदन का समुचित उत्तर ऋषि दयानन्द ने **भ्रमोच्छेदन** ग्रन्थ में दिया है। अबोध निवारण के कर्त्ता ने राजा जी की प्रशंसा की है और राजा जी ने द्वितीय निवेदन के अन्त में (पृष्ठ १०) पर अबोध निवारण के प्रकाशक बाबू राम कृष्ण जी की।

उष्ट्राणां विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्दभाः।
परस्परं प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनिः।

यह उक्ति ही यहां चरितार्थ होती है।

१७. (आक्षेप) पृष्ठ ४४ पं० १९[१९]—**अर्थिप्रत्यर्थिनो राजगृहे युध्यतः** बड़ा आश्चर्य है कि आप इसके उलथे में लिखते हैं कि मुद्दई और मुद्दाले कचहरी में लड़ते हैं इस अभिप्राय से तो संस्कृत में **युध्येते** होना चाहिए (युध्यतः) तो भाव क्विबन्त युध शब्द से '**सुप आत्मनः क्यच्**' ३.१.८ इस सूत्र से **(आत्मनो युद्धमिच्छतीति) इच्छार्थे क्यच्** करने से कथञ्चित् सिद्ध हो सकता है, परन्तु यह तो अनुवादानुसार आपका अभिप्राय ही नहीं झलकता और यदि आप **अनुदात्तेत्लक्षण आत्मनेपद को अनित्य** समझ कर इसे सिद्ध करेंगे तो आप **एधति एधतः** भी लिख सकते हैं॥

समाधान—यह पाठ भी अगले संस्करण में यथोचित बना दिया है। परन्तु ग्रन्थकार का **युध्यतः** पाठ अशुद्ध नहीं है। **चक्षिङ्** के ङित्करण

---

१९. इस संस्करण में पृष्ठ २८८ पर मिश्रितप्रकरण (३) की संख्या ३२।

से अनुदात्तेत् लक्षण आत्मनेपद का जो अनित्यत्व ज्ञापित किया है, उसके व्यापकत्व को न समझ कर ही लेखक ने आक्षेप किया है। युध धातु के परस्मैपद के प्रयोग आर्ष वाङ्मय में बहुधा उपलब्ध होते हैं यथा—**युध्यति**—महाभारत शान्तिपर्व ९७.१७ (निदर्शनार्थ एक स्थान का ही निर्देश किया है) आपने हंसी में जो लिखा है कि 'अनुदात्तत्व लक्षण आत्मनेपद के अनित्यत्व से तो **एधति एधतः** भी लिख सकते हैं।' यह भी लेखक का अज्ञान है। **एध** के परस्मैपद के प्रयोग महाभारत में मिलते हैं। यथा—**एधन्ति**—महाभारत वनपर्व २४६.२२॥

अतः **युध्यतः** को अपशब्द बताना अबोधनिवारण के कर्त्ता का अपना अबोध प्रकट करना है।

परस्मैपदी धातु में आत्मनेपद के और आत्मनेपदी के परस्मैपद में बहुधा शिष्ट प्रयोग मिलते हैं। इसके लिये हमारा ''ऋषि दयानन्द की पद प्रयोग शैली'' ग्रन्थ पृष्ठ २६-२८ देखना चाहिये।

१८. (आक्षेप) पृष्ठ ४५ पं० २६[२०]—**(तेन चर्मांसिभ्यां शतेन सह युद्धं कृतम्)** भला कहिए तो यहां कभी **चर्मांसिभ्यां** हो सकता है? निस्सन्देह यह **द्वन्द्वे घि** इस सूत्र पर हरताल लगा दी जाए तो **चर्मांसिभ्यां शशकपिभ्याम्** इत्यादि बहुत से नये शब्द सिद्ध हो जायं। ठीक ही है स्वामी जी ऐसे भारी प्रसिद्ध विद्वान् हैं। ये कोई भी प्रकरण ऐसा क्यों रहने देंगे जिसकी अशुद्धि का उदाहरण इनके ग्रन्थ में न मिले॥

समाधान—चर्मांसिभ्याम् में **द्वन्द्वे घि** (अ० २.२.३२) के नियम का व्यत्यास दिखाया है। पर लेखक को पाणिनि का **इको गुणवृद्धी** (१.१.३) सूत्र ही स्मरण नहीं रहा। यदि स्मरण रहता तो वे **चर्मांसिभ्याम्** को अशुद्ध न बताते या फिर पाणिनि से ही पूछते महाराज आपने हमें आदेश दिया कि द्वन्द्व समास में घि-संज्ञक का पूर्व प्रयोग किया जाये फिर अपने स्वयं उसका उल्लंघन क्यों किया। वस्तुतः सारा पूर्वनिपात प्रकरण प्रायिक है। पाणिनि ने स्वयं पचासों सूत्रों में इस प्रकरण के विपरीत प्रयोग किया है अतः **गुणवृद्धी** के समान **चर्मांसिभ्याम्** प्रयोग साधु है।

१९. (आक्षेप) पृष्ठ ४६ पं० १[२१]—**(अतिथीन् सेवयसि न वा)**

---

२०. इस संस्करण में पृष्ठ २८९ पर मिश्रितप्रकरण (३) की संख्या ५५।
२१. इस संस्करण में पृष्ठ २८९ पर मिश्रितप्रकरण (३) की संख्या ५६।

मेरी तो अब लिखते लिखते लेखनी थक गई। इतने ही में समझ जाइये कि यदि सेवा करता है इस अनुवादाऽनुसार आपका अभिप्राय है तो **सेवसे** लिखना चाहिए। हां यदि सेवा कराता है यह अभिप्राय हो तो शुद्ध हो सकता है परन्तु आपके हिन्दी लेख के अनुसार यह अभिप्राय ही नहीं झलकता।

समाधान—सेवयसि में स्वार्थ में णिच् प्रत्यय है न कि हेतुमान् में। यथा **रामो राज्यमचीकरत्** (रामायण) में। धातुपाठ के नौ गणों में पठित सभी धातुओं से स्वार्थ में भी णिच् होता है इसमें सभी वैयाकरण समानरूप से सहमत हैं।

२०. (आक्षेप) पृष्ठ ४४ पं० ५[२२]—(**जलवायू शुद्धौ सेवनीयौ**) यहां भी **द्वन्द्वे घि** इस सूत्र के अनुसार (**वायुजले शुद्धे सेवनीये)** लिखना चाहिए इसको कै बेर चितावें॥

समाधान—इसका समाधान भी **चर्मासिभ्याम्** (आक्षेप १८) के समाधान में जो लिखा है उससे ही समझ लेना चाहिए।

२१. (आक्षेप) पृष्ठ ४७ पं० ९[२३]—**(ते का चिकीर्षाऽस्ति)** वाह! वाह!! वाह!!! इस वाक्य से तो दयानन्द जी की सभी कलई खुल गई। क्योंकि इनको यह भी नहीं मालूम कि सूत्रानुसार युष्मदस्मद् को कैसे स्थल में **ते मे** आदि-आदि आदेश होते हैं। देखिए अष्टाध्यायी में अ० ८ पा० १ सूत्र में "**पदात्" एतदधिकारीय** अ० ८ पा० १। २२ "**तेमयावेक-वचनस्य**" सूत्र से किसी पद से परे जो **तव** या **मम** उसी को **ते** और **मे** हो सकते हैं, स्वामी जी ने तो वाक्य के आरम्भ में ही झोंक दिया। अब यही समाधान बाकी रह गये हैं कि ये वैदिक शब्द हैं या **उपसर्ग विभक्ति-स्वर-प्रतिरूपक निपात** हैं इत्यादि। उचित ही है स्वामी जी इन दिनों के वैदिक हैं, जो चाहें सो कहें।

समाधान—ते का चिकीर्षाऽस्ति वाक्य में वाक्यादि में प्रयुक्त **ते** पद विभक्तिप्रतिरूपक निपात है। जब आक्षेप्ता को स्वयं ज्ञात है कि चादिगण (१.४.५७) में **उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः** गणसूत्र पठित है तब हंसी उड़ाने का उन्हें क्या अधिकार है। यदि वे कहें

---

२२. इस संस्करण में पृष्ठ २९० पर मिश्रितप्रकरण (३) की संख्या ७१।
२३. इस संस्करण में पृष्ठ २९० पर मिश्रितप्रकरण (३) की संख्या ७४।

कि इस सूत्र के द्वारा उन्हीं विभक्तिप्रतिरूप (विभक्त्यन्तसदृश) शब्दों की निपात संज्ञा होती है जो व्यवहार में आते हैं तो इस विषय में हमारा कहना है कि **ते मे** विभक्तिप्रतिरूपक निपात वैयाकरणों द्वारा साक्षात् स्वीकृत हैं। इसके दो साक्षात् प्रमाण उपस्थित करते हैं—

हैम व्याकरण का सूत्र है—**विभक्तिथमन्ततसाद्याभाः** (१.१.३३) इसकी बृहद्वृत्ति में लिखा है—**ते मे चिराय अह्नाय....एते प्रथमादि-विभक्त्यन्तप्रतिरूपकाः।** इसके बृहन्न्यास में हेमचन्द्राचार्य ने स्पष्ट लिखा है **ते प्रभृतयश्चत्वारश्चतुर्थ्यन्तप्रतिरूपकाः।** (बृहद्वृत्ति-बृहन्न्यास-लघुन्यास संवलिता, भाग १ पृष्ठ ५६)

धाराधीश भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण नामक व्याकरण का सूत्र है—**अहं शुभं कृतं पर्याप्तं येन तेन चिरेणान्तरेण ते मे चिराय अह्नाय... सुप्प्रतिरूपाः।** १.१.१२४॥

इस सूत्र की दण्डनाथकृत हृदयहारिणी टीका में लिखा है—**ते इति त्वयार्थे....श्रुतं ते राज शार्दूल। मे मयार्थे—श्रुतं मे भरतर्षभ!** भाग १ पृष्ठ ३८॥

व्याकरण के उपर्युक्त दो प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध है कि **ते मे** विभक्तिप्रतिरूपक निपात हैं। हेमचन्द्र ने चतुर्थ्यर्थ में कहा है और दण्डनारायण ने तृतीयार्थ के उदाहरण दिये हैं। ठीक इसी प्रकार यहां **ते** निपात **तव** इस षष्ठ्यर्थ में प्रयुक्त है अतः यहां आक्षेप्ता ने जो दोष दिया है वह उपस्थित ही नहीं होता पुनरपि सुकुमारमति बालकों की दृष्टि से दूसरे संस्करण में **ते** के स्थान में **तव** सुगम पाठ बना दिया है।

२२. (आक्षेप) पृष्ठ १९ पं० १७[२४]—**(अयं मम लेखोऽस्ति पश्यताम्)** हां हां देखते हैं आप का ही लेख है तभी तो इतना शुद्ध है—आगे भी देखते आये हैं और यहां भी देखते हैं। आप तो **पश्यतु** अथवा **दृश्यताम्** के धोखे में लिख गए। पर भला कुछ लोट पोट कर रफू बना निकल जाइएगा, पर वह अभिप्राय आप के अनुवाद से खुलता ही नहीं।

---

२४. इस संस्करण में पृष्ठ २६४ पर साक्षिप्रकरण की संख्या ३६। मीमांसक जी के समाधान की अपेक्षा वर्तमान प्रकाशित पाठ उचित प्रतीत होता है। श्रोता लेखक ने **पश्यैतम्** को पश्यताम् सुन लिया होगा। क्योंकि यह ग्रन्थ बोलकर लिखवाया हुआ है। सम्पादक

कह दीजिये कि प्रथम पुरुष के द्विवचन का रूप है।

समाधान—इस आक्षेप में **पश्य तम्** इन दो पदों के स्थान पर मुद्रण वा लेखन प्रमाद से **पश्यतम्** एक शब्द बन कर **पश्यताम्** बन गया है। ऐसी भूलें लेखन वा मुद्रण में प्रायः हो जाती हैं यह सम्पादनकलाप्रवीण भले प्रकार जानते हैं। यहां मुद्रणकर्त्ता द्वारा **पश्य तम्** में दो पदों का मिलाना और **त** के आगे **आ** की मात्रा '**ा**' का जोड़ा जाना साधारण सा दोष है। पर आक्षेप्ता का तो **घटं भित्त्वा पटं छित्त्वा प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्** उक्ति के अनुसार सुगम प्रसिद्धि प्राप्त करनी थी, तब भला वह इसमें क्यों चूके।

२३. (आक्षेप) पृष्ठ ६ पं० २०[२५]—(**येन शरीराच्छ्रमो न क्रियते स नैव शरीरसुखमाप्नोति)** यहां **शरीरेण श्रमो न क्रियते** ऐसा होना चाहिए क्योंकि "**विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्**" २.३.२५ इस अनुशासन से गुणवाचक शब्द ही से पञ्चमी होती है। यदि कोई यह कहे कि विभाषा के योग विभाग से जैसा **धूमादग्निमान्** होता है वैसे ही हम भी कहेंगे तो यह बात तो वैसी ही भई जैसे कि किसी ने पूछा दयानन्द जी वेद नाम किसका तो आप बोले कि संहिता मात्र का। तब उसने कहा कि कात्यायन महर्षि तो "**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**" ऐसा बोलते हैं। तब आप बोले यह तो कृत्रिम है। तब उसने कहा कि समस्त भारतवर्ष के प्रतिज्ञा-सूत्र के पुस्तक में यह पाठ मिलता है। तब तो आप बोले वे सब पुस्तक अशुद्ध हैं, बस तो उन्हीं का कहना प्रमाण हो तो **शरीराच्छ्रमो** सिद्ध हो जायेगा।

समाधान—संस्कृतवाक्यप्रबोध के उक्त वाक्य पर किये आक्षेप का उत्तर परिशिष्ट १ में प्रकाशित लेख में भली भांति दे दिया गया है।

प्रकृत प्रकरण के अनन्तर वेदसंज्ञा जो लेख है वह राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के पत्र एवं उनके छापे निवेदन तथा ऋषि दयानन्द द्वारा दिये गये पत्रोत्तर एवं निवेदन के उत्तर में लिखे गये **भ्रान्तिनिवारण** ग्रन्थ से सम्बन्ध रखता है। इस विषय में पाठक ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित **पत्र** एवं **भ्रान्तिनिवारण** ग्रन्थ देखें। यथार्थता विदित हो जायेगी। अब रहा कात्यायन के **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्** सूत्र की बात। उसके विषय में

---

२५. इस संस्करण में पृष्ठ २५२ पर भोजनप्रकरण की संख्या १५।

ऋषि दयानन्द कृत **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** का **वेदसंज्ञा प्रकरण** का आरम्भिक भाग देखना चाहिये।

२४. (आक्षेप) पृष्ठ ९ पं० २२[२६]—''**ईश्वरः कोऽस्तीति ब्रूहि**'' इस वाक्य का अर्थ स्वामीजी लिखते हैं कि ''ईश्वर किसको कहते हैं आप कहिए''। '**न वेति विभाषा**' १.१.४४ पाणिनि जी के इस सूत्र की व्याख्या जानने वाले लोगों की दृष्टि से यह बात सिद्ध हे कि ''**इति शब्दोऽर्थविपर्यासकृत्**'' तब तो **ईश्वरः कोऽस्तीति** वाक्य से कदापि यह अर्थ न होगा कि ईश्वर किसको कहते हैं आप कहिए, किन्तु यह अर्थ होगा कि तुम ''**ईश्वरः कोऽस्ति**'' इस वाक्य को कहो।

समाधान—'इति' शब्द का वाक्यार्थ-बोधन में भी प्रयोग होता है यह आक्षेप्ता को ज्ञात ही नहीं। आप्टेकृत संस्कृत इंगलिश कोश (हिन्दी-संस्करण) में लिखा है—

इति....(वाक्यार्थ द्योतक)-ज्ञास्यसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणांक इति शि० १.२३॥ (यहां ग्रन्थ का पता अशुद्ध छपा है)।

२५. (आक्षेप) पृष्ठ १० पं० ९[२७]—''**चक्रवर्त्तिशब्दस्य कः पदार्थः**'' भला आर्थिक लोगों को तनिक दृष्टि देनी चाहिए कि ''चक्रवर्त्तिशब्द का क्या अर्थ है इसकी संस्कृत यही होगी? माना कि कदाचित् स्वामी जी यह कहें कि हमारा यह तात्पर्य है कि चक्रवर्त्ती इस पद का पदार्थ क्या है, तो ऐसे समास में एकदेशान्वय कभी होता ही नहीं फिर यह कैसे शुद्ध ठहरा*।

*ऐसी अशुद्धि का स्वामी जी को अभ्यास है क्योंकि पृष्ठ ३० के १७ पंक्ति में लिखा है कि (सभाशब्दस्य कः पदार्थ)**। (अबोध निवारण में छपा नोट)

समाधान—इस का समाधान पूर्व परिशिष्ट संख्या १ में बहुत सुन्दर रूप दे दिया गया है।

२६. (आक्षेप) पृष्ठ १३ पं० २२[२८]—''**मुद्रैकया सपादप्रस्थं विक्रीणते**''। **मुद्रैकया** प्रयोग तो स्वामी जी ने न मालूम किस व्याकरण

---

२६. इस संस्करण में पृष्ठ २५५ पर सभाप्रकरण की संख्या ४।

२७. इस संस्करण में पृष्ठ २५५ पर आर्यावर्त्तचक्रवर्तिराजप्रकरण की संख्या ३।

** मूलपाण्डुलिपि में 'सभाशब्दस्य कोऽर्थः' यह पाठ है। सम्पादक

२८. इस संस्करण में पृष्ठ २५८ पर क्रयविक्रयप्रकरण की संख्या ५।

से सिद्ध किया। पाणिनीय से तो कदापि सम्भव ही नहीं है। क्योंकि उसमें यह लिखा है कि ''**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**'' २.१.५७ इस सूत्र के अनुसार **एकमुद्रया** ऐसा होना चाहिए और व्यास में **एकया मुद्रया, मुद्रया एकया** चाहे जैसा कर लो।

समाधान—**मुद्रैकया** में एक शब्द का साक्षात् परनिपातबोधक सूत्र नहीं है, परन्तु **राजदन्तादिषु परम्** (अ० २.१.३१) के आकृतिगण होने से अथवा **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** (अ० २.१.५७) इस समास विधायक सूत्र में पठित 'बहुल' पद से परनिपात होगा। एक का ऐसे स्थानों में पर प्रयोग देखा जाता है। अथवा एक शब्द पूर्णता का वाचक है। लोक में इस अर्थ में जनसाधारण में आज भी बोला जाता है। किसी वस्तु का मूल्य पूछने पर बेचने वाला '**एक रुपया**' के स्थान पर बोलता है '**पूरा रुपया**' से न कम न अधिक। इस अर्थ में **मुद्राया एकम् मुद्रैकम्** षष्ठी समास होगा **मुद्रैकया** का अर्थ होगा पूरे एक रुपये से।

२७. (आक्षेप) पृष्ठ १५ पं० १३[२९]—'**एतस्मिन् किमुप्यते**' इसका उत्तर जो स्वामी जी ने दिया भी तो क्या उत्तम दिया ''**यवान्**'' अर्थात् यवों को। ह! ह!! ह!!! भला स्वामी जी तो बड़े भारी वैयाकरण हैं उनके संसर्ग से ऐसा ज्ञात होता है कि छापेखाने वाले भी विद्वान् हो गए, कि स्वामी जी ने **यवाः** लिखा और उन्होंने **यवान्** बना लिया। **उप्यते** यह ''**डुवप बीजसन्ताने**'' धातु से कर्मणि प्रत्यय है और इसी कारण उत्तर में **यवाः** होना चाहिए।

समाधान—यद्यपि यह सामान्य दृष्टि से दीखने वाली भूल ठीक कर दी गई है तथापि यह कोई राजशासन अथवा वैयाकरणों का शासन नहीं है कि कर्म में प्रयुक्त वाक्य का उत्तर कर्म में ही हो। **किं पचसि;** का उत्तर प्रायः **ओदनं पच्यते** इस प्रकार दिया जाता है कोई भी उसे अशुद्ध नहीं कहता। इसी प्रकार **किं पच्यते** का उत्तर भी **तण्डुलान् पचे** में दिया जाता है। इसी लौकिक वाग्व्यवहार के अनुसार **किमुप्यते** का उत्तर **यवान् वपामि** सर्वथा ठीक है। पदों में पदैकदेश का और वाक्यों में वाक्यैकदेश का प्रयोग होता है। यथा **फलं गृहाण** के स्थान पर **गृहाण=लीजिये** इतना ही बोलते हैं। इसी प्रकार यहां भी **यवान् वपामि** के स्थान पर यदि **यवान्**

---

२९. इस संस्करण में पृष्ठ २६० पर क्षेत्रवपनप्रकरण की संख्या ११।

मात्र बोला जाता है, तो सर्वथा ठीक है। भाषा का व्यवहार लोकव्यवहार से जाना जाता है व्याकरण से नहीं, यह शास्त्र सिद्धान्त है।

२८. (आक्षेप) पृष्ठ १६ पं० १४[३०]—**(एतद्रूप्यैकेन कियन्मिलति)** अहा हा! एकदम से स्वामी जी ने तो ''एक'' शब्द को विशेष्यवाचक समझ लिया है। भला यदि मनोरमा पढ़े होते और उसका प्रमाण मानते तो यही कह देते कि ''**पाचकपाठकादिषु विशेष्यविशेषणभावे कामचारः**'' परन्तु इन्होंने तो इसका प्रमाण मानना ही नहीं है। अब महाभाष्य के पन्ने उलटने ही रह गये हैं। भला यदि कहीं महाभाष्य में इसका प्रमाण मिल जाएगा तो हम देख लेंगे।

समाधान—इसका समाधान पूर्व २६वें आक्षेप के समाधान से ही समझ लें।

२९. (आक्षेप) पृष्ठ १७ पं० ७[३१]—**(यद्येतावति समये न दास्यसि चेत्तर्हि राजनियमन्निग्राह्य गृहीष्यामि**) क्यों न हो ''**ग्रहिज्यावयिव्यधि-वष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च**'' ६.१.१६॥ बस यह सूत्र स्वामी जी को कहीं याद आ गया और सम्प्रसारण कर मारा। भला यदि यह कहो कि यहां हस्तदोष है, तो अगले वाक्य में कैसे हस्तदोष हुआ जहां लिखा है **(यद्येवं कुर्यान्तर्हि तथैव गृहीतव्यम्)** इन स्थानों पर क्रम से **ग्रहीष्यामि** और **ग्रहीतव्यम्** होना चाहिये।

समाधान—यहां निस्सन्देह लेखन वा मुद्रण प्रमाद से **ग्रहीष्यामि** के स्थान पर **गृहीष्यामि, ग्रहीतव्यम्** के स्थान पर **गृहीतव्यम्** छपा है। अतएव इसे अगले संस्करण में ठीक कर दिया गया है।

व्याकरणशास्त्र की गम्भीरतम उपपादन शैली के अनुसार प्रकृति में (धातु प्रतिपादिक) में लोप-आगम-वर्णविकार=संप्रसारण आदि करके जो रूप निष्पन्न किया जाता है वह स्वतन्त्र लुप्त प्रकृति का संकेत है। इस विषय में हमने '**ऋषि दयानन्द की पदप्रयोगशैली**' एवं '**आदिभाषायां प्रयुज्यमानानाम् अपाणिनीयप्रयोगाणां साधुत्वविवेचनम्**' लेख में विस्तार से विवेचन किया है। तदनुसार ग्रह समानार्थक **गृह** और **गृभ** स्वतन्त्र धातुएं हैं। इन में भी इट् आगम को दीर्घ होता है। तदनुसार प्रथम संस्करण

---

३०. इस संस्करण में पृष्ठ २६१ क्रयविक्रयार्घप्रकरण की संख्या १।

३१. इस संस्करण में पृष्ठ २६१ पर उत्तमर्णाधमर्णप्रकरण संख्या ५। मूलपाण्डुलिपि में ग्रहीष्यामि ऐसा पाठ है। प्रथम संस्करण में गृहीष्यामि छपा है। सम्पादक

का पाठ भी युक्त है।

३०. (आक्षेप) पृष्ठ १७ पं० १७[३२]—(**भोस्साक्षिन् त्वमत्र किञ्चिज्जानासि न वा**) इस वाक्य में **साक्षिंस्त्वमत्र** ऐसा उचित था, यदि कहो कि **''संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः। नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते''**

तब तो यह वाक्य शुद्ध हो सकता है। इसी कारण से ऐसी छोटी-छोटी बातों पर इस पुस्तक में हमने दृष्टि दिया ही नहीं है क्योंकि दयानन्द जी तो साधु ठहरे। यह सन्धि विग्रह के मर्म को क्या जानें।

समाधान—आक्षेप्ता के लेख से स्वयं स्पष्ट है कि **भोस्साक्षिन् त्वमत्र** में संहिताभाव पक्ष में सत्वाभाव ठीक है, फिर भी कुछ-न-कुछ लिखना था, सो लिख डाला। अतः इस पर कुछ भी लिखना व्यर्थ है।

३१. (आक्षेप) पृष्ठ २६ पं० २६[३३]—**(सत्यमेवमेतदीश्वरकृपया सुखेन रात्रिर्गच्छेत् प्रभात आगच्छेत्)** यहां **प्रभातः** के स्थान में **प्रभातम्** चाहिए। और क्या कहें बस इतना ही कहते हैं कि **''दयानन्दस्तु लिङ्गमपि न जानाति कोषं पश्यतु''।**

समाधान—यहां पर सुगमता के लिए वाक्यरचना का संशोधन अगले संस्करण में कर दिया है। पुनरपि **प्रभात आगच्छेत्** वाक्य अशुद्ध नहीं है। पण्डित जी को शास्त्ररहस्य विदित ही नहीं है। लिङ्ग लोकाश्रय होते हैं—**लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य** (महाभाष्य)। शिष्ट प्रयोगों में इसी कारण लिङ्गानुशासन के सामान्य नियमों का बाध देखा जाता है। प्रभात शब्द के विषय में क्या कहें, यदि पण्डित जी ने कालिदास का 'शाकुन्तल' नाटक भी पढ़ा होता तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि प्रभात शब्द नित्य नपुंसक नहीं है। शाकुन्तल ४ में लिखा है **ननु प्रभाता रजनी।** यदि कहो कि रजनी के कारण **प्रभाता** स्त्रीलिङ्ग में हो गया तो यहां भी **रात्रिर्गच्छेत् प्रभात आगच्छेत्** में रात्रि की प्रतिद्वन्द्विता में अध्याह्रियमाण **दिवस** को निमित्त मानकर **प्रभातः** क्यों न बनेगा।

३२. (आक्षेप) पृष्ठ ७ पं० १२[३४]—**(विष्णुमित्रोऽयं कुरुक्षेत्र-**

---

३२. इस संस्करण में पृष्ठ २६२ पर साक्षिप्रकरण संख्या १।

३३. इस संस्करण में पृष्ठ २७१ पर सायंकालकृत्यप्रकरण संख्या १६।

३४. इस संस्करण में पृष्ठ २५३ पर देशदेशान्तरप्रकरण संख्या ४।

वास्तव्यः) यहां **कुरुक्षेत्रस्य वास्तव्यः** चाहिए क्योंकि "**वसेस्तव्य**" करने से कर्त्रर्थ में **वास्तव्यः** प्रयोग होता है और तव्य के संग में तो "**पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन**" सूत्र से षष्ठी समास का निषेध है। यदि तव्यत् कहो तो **ओमिति ब्रूमः**।

समाधान—'पूरणगुण'० (अ० २.२.११) आदि षष्ठी समास के प्रतिषेध का प्रकरण प्रायिक है। स्वयं सूत्रकार ने ऐसे प्रयोग किये हैं जहां उसी के अनुसार समास का अभाव प्राप्त होता है। यथा इसी (२.२.११) सूत्र में अव्यय का षष्ठी के साथ समास का निषेध किया है परन्तु **अनुर्यत्समया** (अ० २.१.१५) में **समया अव्यय** का **यस्य** के साथ भी समास करके निर्देश किया है। इसी सूत्र में गुणवाचक के साथ भी समास का निषेध किया है परन्तु **अधिकरणैतावत्वे च** (च० २.४.१५) में समस्त निर्देश किया है। पाणिनि ने कर्ता में विहित तृच् और अक् प्रत्ययान्त का षष्ठी के साथ **कर्तरि च** (अ० २.२.१६) सूत्र द्वारा निषेध किया परन्तु **जनिकर्तुः प्रकृतिः** (अ० १.४.३०), **तत्प्रयोजको हेतुश्च** (अ० १.४.५५) में स्वयं समास का निर्देश किया है।

समास के नियमों की प्रायिकता के सम्बन्ध में तो बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु इतने से ही ज्ञान हो जायेगा कि सूत्रकार स्वयं अपने नियमों को प्रायिक मानता है।

आक्षेप्ता पाणिनीय सूत्रों को बार-बार उद्धृत करके यह बताना चाहता है कि स्वामी दयानन्द को व्याकरण आता ही नहीं। परन्तु यहां तो स्वयं पण्डित जी सपाट मैदान में मुंह के बल गिरे हैं। उन्हें ज्ञात ही नहीं कि **वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च** (३.१.९६) वार्त्तिक में **तव्यत्** को णिद्वत् कहा है, **तव्य** को नहीं (तव्य तव्यत् दो स्वतन्त्र प्रत्यय हैं, **तव्यत्तव्यानीयरः** ३.१.९६)। पण्डित जी तव्य को णिद्वद्भाव समझ बैठे हैं। **पूरणगुण-सुहितार्थ०** (अ० २.१.११) में **तव्य** प्रत्यय का ग्रहण है अतः इस सूत्र से **तव्यत्** प्रत्ययान्त के समास का निषेध होता ही नहीं, फिर अशुद्धि कैसे?

३३. (आक्षेप) पृष्ठ ३३ पं० ५[३५]—(**शिंसपस्य काष्ठानि दृढानि सन्ति शालस्य दीर्घाणि च**) इस स्थान पर तो स्वामी जी ने वही बात

---

३५. इस संस्करण में पृष्ठ २८१ पर वृक्षवनस्पतिप्रकरण संख्या ९।

करी कि किसी समय एक अध्यापक ने अपने शिष्य से पूछा कि गङ्गाजलम् और **गुरुभक्तिः** पदों का विग्रह कहो, तो शिष्य ने उत्तर दिया कि महाराज कुछ कठिन बात पूछिये यह तो बहुत सहज है, **गङ्गास्य जलम्=गङ्गाजलम्** और **गुरुस्य भक्तिः=गुरुभक्तिः** वाह! वाह!! वाह!!! भला स्वामी जी ने कौन सा कोष देखा जो **शिंशिपायाः** का **'शिंसपस्य'** लिखा॥

समाधान—इस भूल का संशोधन अगले संस्करण में कर दिया है।

३४. (आक्षेप) पृष्ठ ३२ पंक्ति २३[३६]—**(प्रातः कुक्कुटा ब्रुवन्ति)** स्वामी जी को क्या सूझा हम नहीं जानते, **ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि** का प्रयोग तो व्यक्त वाणी अर्थात् अक्षरात्मक वाणी में होता है न कि कुक्कुटादिकों के शब्दों में।

समाधान—महाभाष्य में **व्यक्तवाचां समुच्चारणे** (अ० १.३.४८) सूत्र पर लिखा है—**कुक्कुटेनोदिते उच्यते-कुक्कुटो वदतीति।** यहां पतञ्जलि ने **वद** धातु का प्रयोग किया है और पाणिनि ने **वद व्यक्तायां वाचि** कहा है। अतः यदि व्यक्तवाक् पठित वद धातु का प्रयोग कुक्कुट के लिए हो सकता है, तो **ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि** का नहीं हो सकता इसमें क्या प्रमाण है? पुनरपि उदारमना ग्रन्थकार ने आशयानुसार द्वितीय संस्करण में **सम्प्रवदन्ति** प्रयोग कर दिया है।

३५. (आक्षेप) पृष्ठ ३४ पंक्ति ४[३७]—**(रात्रौ काका न जल्पन्ति)** क्या स्वामी जी ने काकवाणी और निजवाणी के लिए एक ही धातु रक्खा? भला कुछ तो भेद रखते। जल्प धातु का वह अर्थ है जो उक्ति-प्रत्युक्ति रूप में होता है और न कि काकादिकों के बोलने में॥

समाधान—अगले संस्करणों में इस के स्थान पर **वाश्यन्ते** बना दिया है।

३६. (आक्षेप) पृष्ठ ३२ पं० २२[३८]—**(रात्रौ श्वानः प्रक्कन्ति)** इस वाक्य में **प्रक्कन्ति** के स्थान में **बुक्कन्ति** लिखना चाहिए क्योंकि **बुक्क भषणे** इस भौवादिक धातु से कुक्कुर के शब्द में **बुक्कन्ति** होता

---

३६. इस संस्करण में पृष्ठ २७७ पर ग्राम्यपशुप्रकरण संख्या १६।

३७. इस संस्करण में पृष्ठ २७८ पर ग्रामस्थपक्षिप्रकरण संख्या ७।

३८. इस संस्करण में पृष्ठ २७७ पर संख्या १५। मूल हस्तलेख में प्रबुक्कन्ति पाठ है, यहाँ मुद्रण की भूल हुई है। सम्पादक

है। इसीलिए **प्रक्कन्ति** प्रामादिक लेख है।

समाधान—**प्रक्कन्ति** यह स्पष्ट मुद्रण दोष है। **बुक्कन्ति** का **बु** ही मुद्रण दोष से **प्र** बन गया है। इस साधारण से मुद्रण प्रमाद को उपस्थित करना लेखक की ईर्ष्या को द्योतित करता है।

३७. (आक्षेप) पृष्ठ ३५ पंक्ति १३[३९]—**(अयं देवदत्तो हंसगतिं गच्छति)** यहां **हंसगतिं गच्छति** बड़ा ही अशुद्ध है जैसे कि **पाकं पचति, घटो घटः, दण्डवान् दण्डवान्** इत्यादि वाक्य आकाङ्क्षाशून्यतया अशुद्ध होते हैं।

समाधान—अगले संस्करणों में स्पष्टतार्थ **हंसगत्या** ऐसा परिवर्तन कर दिया है। आक्षेप्ता ने इसे **पाकं पचति** आदि के समान आकांक्षाशून्यतया अशुद्ध कहा है, परन्तु संसार का कोई भी वैयाकरण **पाकं पचति** आदि प्रयोगों को अशुद्ध नहीं कह सकता। महाभाष्य में अनेक स्थानों पर पद के स्थान में पदैकदेश और वाक्य के स्थान में वाक्यैकदेश के प्रयोग की चर्चा की है। यथा **सत्यभामा** के स्थान में **सत्या** या **भामा, प्रविश गृहम्** के स्थान में **प्रविश** मात्र, **भक्षय पिण्डीम्** के स्थान में **पिण्डीम्** आदि का।

३८. (आक्षेप) पृष्ठ ४२ पंक्ति २[४०]—**(आभूषणान्युत्तमानि निर्मिमीस्व)** **निर्मिमीस्व** के स्थान में **निर्मिमीष्व** होना उचित है। **आदेशप्रत्यययोः** सूत्र से षत्व होता है, यह छापेखाने की अशुद्धि नहीं हो सकती क्योंकि कई बार ऐसा ही लिखा है॥

समाधान—यह भूल लेखक की नहीं है अपितु आप के देश के अशुद्ध उच्चारण की कृपा का फल है। आज भी काशी के अनेक लब्धप्रतिष्ठ पण्डित **श ष** के स्थान में **स** का उच्चारण और लेखन करते हैं। यह ग्रन्थ काशी में बना तथा वहीं छपा। किसी काशीस्थ पण्डितम्मन्य जो लिपिक एवं संशोधक रहा होगा, उसने अशुद्ध लिखा वा छपवाया है।

३९. (आक्षेप) पृष्ठ ४६ पं० १३[४१]—**(अस्मिन् गृहे विस्तराणि श्रेष्ठानि सन्ति)** कुछ और भी रङ्ग खुले, क्या बिछौने की संस्कृत स्वामी

---

३९. इस संस्करण में पृष्ठ २७९ पर वन्यपक्षिप्रकरण पर संख्या १।

४०. इस संस्करण में पृष्ठ २८५ पर सुवर्णकारप्रकरण संख्या २।

४१. इस संस्करण में पृष्ठ २८७ पर संख्या १२। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ ३६ में स्रस्तराणि पाठ है। छपते समय किसी ने बदला है।

जी को कहीं न मिली जो घबरा के **विस्तराणि** लिख दिया। क्या मनु जी का यह वाक्य नहीं स्मरण है—

''गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्त्रस्तरेषु कटेषु च।
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनीषु च''।

जिसमें स्वच्छतया स्त्रस्तर नाम बिछौने का है। हमको समझ पड़ता है कि स्वामी जी को **''प्रथने वावशब्दे''** सूत्र स्मरण आ गया और तभी बिछौने की संस्कृत **विस्तर** लिखी। पर यह न समझे कि इस सूत्र से **विस्तारः** होता है। यदि यह कहें कि **विस्तरः** भी तो होता है तो **ग्रन्थविस्तरः** तो पुल्लिग शब्द है, नपुंसक कहां से आया॥

समाधान—आक्षेप्ता ने **विस्तराणि** को अशुद्ध कहा है, परन्तु यह बिछौने अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसके लिए आप्टे संस्कृत इंगलिश कोश देखा जा सकता है। विष्टर शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। रही लिङ्गदोष की बात, सो लिङ्गानुशासनस्थ नियमों का लोक और शास्त्र में प्रायः अतिक्रमण देखा जाता है। अतएव महाभाष्यकार कहते हैं—**लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य। सम्बन्धमनुवर्तिष्यते** (महा० १.१.३) में पुंल्लिग का क्रमशः पतञ्जलि और पाणिनि ने प्रयोग किया है। क्या ये सब मूर्ख थे? **विस्तर** और आपका सुझाया **स्त्रस्तर** दोनों अप् प्रत्यान्त होने पर भी बिछौने अर्थ में नपुंसक में ही प्रयुक्त होते हैं।

४०. (आक्षेप) पृष्ठ ४२ पं० १८,२०,२४[४२]—इत्यादि।

(१) **भो कुलाल** (२) **भो तन्तुवाय** (३) **भो सूच्या** (४) **भो कारुक** इन वाक्यों में कहिए **भोः** के विसर्ग का लोप किस सूत्रानुसार किया? इनको क्या? इनकी तो जिह्वा पर सरस्वती है क्योंकि नाम ही दयानन्द सरस्वती है॥

समाधान—**भोस्** समानार्थक **भो** एक स्वतन्त्र ओकारान्त निपात है उसका इन स्थलों पर प्रयोग जानना चाहिए। इसी प्रकार **भगोस् अघोस्** समानार्थक **भगो अघो** स्वतन्त्र निपात भी हैं। इसी अर्थ को ध्वनित करने के लिए **सरस्वतीकण्ठाभरण** १.१.१२० सूत्र **अथोमथोनोभोभगोअघो-हंहोहोअहो** में ओकारान्त **अथो नो हंहो हो अहो** के मध्य में **भो भगो**

---

४२. इस संस्करण में पृष्ठ २८६ पर कुलालप्रकरण संख्या १, तन्तुवायप्रकरण संख्या १, सूचीकारप्रकरण संख्या १।

अघो का पाठ किया है। अन्यथा ओकारान्तों के मध्य में न पढ़ कर उनके आदि वा अन्त में पढ़ते। ग्रन्थकार ने अन्यत्र सकारान्त **भोस्** का प्रयोग भी किया है। अत: उभयथा प्रयोगों से वे इस के उभयथा रूपों से परिचित थे, यह स्पष्ट है।

४१. (आक्षेप) पृष्ठ ३० पं० ४[४३]—**(अहं पद्भ्यां ह्यो ग्राममगमिष्यम्**) यहां **अगमम्** के स्थान पर स्वामी जी ने **अगमिष्यम्** का प्रयोग अपने लकारार्थ के परम पाण्डित्य दिखलाने के लिए किया है, क्या कहें इस अवस्था पर भी लकार का प्रयोग न आया तो कब आएगा?॥

समाधान—यह लेखन वा मुद्रण सम्बन्धी दोष अगले संस्करण में ठीक कर दिया गया है। **आगम्** में लुङ् लकार है। वह भूतसामान्य में होता है अत: उसका **ह्यः** के साथ सम्बन्ध हो जायगा। वैसे **ह्यः** के योग में **अगच्छम्** प्रयोग युक्ततर है।

द्वितीय प्रकरण

प्रथम प्रकरण में तो व्याकरण की अशुद्धियां दिखा दी गईं। अब इस प्रकरण में अर्थाशुद्धियां और अनुवाद की अशुद्धियां कुछ थोड़ी सी दिखा दी जाती हैं।.....कतिपय अशुद्धियों को देखकर ग्रन्थभर का वृत्तान्त सब कोई जान लेवें। देखिये—

४२. (आक्षेप) पृष्ठ १ पं० ८[४४]—(शरीर की शुद्धि करके ईश्वर ज्ञान के लिये सन्ध्योपासना करो) इस की संस्कृत स्वामी जी लिखते हैं कि **(शौचादिकं कृत्वा सन्ध्यामुपासीरन्)** हा! बड़ा अनर्थ है देखिये तो 'ईश्वर ज्ञान के लिये' इसकी संस्कृत क्या लिखी है? कुछ नहीं। दूसरे आप ही लोग कहिए पाठकगण ''उपासना करो'' इसकी संस्कृत क्या यही है कि '**उपासीरन्**'। ऐसे विषय के ऐसे स्पष्ट करने में लेखनी को बहुत परिश्रम देना व्यर्थ है, इतने में ही समझ जाइए कि जिस ने लघुकौमुदी भी पढ़ी होगी उसको भी इस का पूर्णतया विवेक होगा॥

समाधान—लेखक ने यहां छल से काम लिया है। ग्रन्थकार (ऋषि दयानन्द) ने हिन्दी का संस्कृत में अनुवाद नहीं किया। यदि हिन्दी का संस्कृत में अनुवाद होता तो यह दोष कथंचित् दिया जा सकता था।

---

४३. इस संस्करण में पृष्ठ २७४ शरीरावयवप्रकरण की संख्या ६२।

४४. इस संस्करण में पृष्ठ २४७ गुरुशिष्यवार्तालाप्रकरण की संख्या ८।

ग्रन्थकार ने तो संस्कृत का हिन्दी में भावार्थ लिखा है इसी प्रकार अगले आक्षेपों में भी समझें। भावार्थ में अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए अर्थात् सन्ध्या किस लिए करो, इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए 'ईश्वर ज्ञान के लिए' ये पद हिन्दी में अधिक रखे हैं अतः इन पदों में तो भाव स्पष्ट करना ग्रन्थकार को इष्ट था न कि शाब्दिक अनुवाद देना।

उपासीरन् के स्थान पर **उपासीध्वम्** पाठ होना चाहिए था। वैसे **उपासीरन्** पाठ में भी **युष्मद्** के स्थान पर प्रकरण पठित **विद्यार्थिनः** का सम्बन्ध जोड़ने पर कोई अशुद्धि नहीं रहती, क्योंकि **युष्मद्** का भी साक्षात् निर्देश नहीं है। वैसे महाभारत आदि आर्ष ग्रन्थों में इस प्रकार का पुरुष विन्यास का प्रयोग बहुधा मिलता है। यथा—

वयं.....प्रतिपेदिरे। महा० शान्ति ३३६।३१॥

यूयं.....अपराध्येयुः। महा० वन २३९।१०॥

ददृशिरे वयम्। महा० शान्ति ३३६।३५॥

४३. (आक्षेप) पृ० ५ पं० १६[४५]—(आज का) इसकी संस्कृत (नित्यः) लिखी है।

समाधान—यहां भी पूर्ववत् समझें। संस्कृत में "**नित्यः**" पद होने पर भी प्रकरण के अनुसार यहां "**आज का**" स्वाध्याय ही अभीष्ट है। अतः हिन्दी भावार्थ में "**आज का**" लिखना कुछ भी अनुचित नहीं। फिर भी अगले संस्करण में "**आज का**" के स्थान पर "**नित्य का**" पाठ कर दिया गया है।

४४. (आक्षेप) पृष्ठ ६ पं० २[४६]—(शाक, दाल, कढ़ी, भात, रोटी, चटनी आदि)। इसका उल्था लिखा है कि **(शाकसूपौदश्वित्कौदनरोटिकादयः)** भला और जो गड़बड़ है सो तो हुई है, चटनी कहां से निकली? हां यदि स्वामी जी ने **आदयः** को **आदी** की चटनी समझा हो तो आश्चर्य नहीं॥

समाधान—बलिहारी है आक्षेप्ता की बुद्धि की जो उसने इतना भी नहीं समझा कि संस्कृत में पढ़े गये **आदि** पद से चटनी आदि अन्य भोज्य

---

४५. इस संस्करण में पृष्ठ २५१ पर भोजनप्रकरण संख्या १। मूल में आज का ही पाठ है।

४६. इस संस्करण में पृष्ठ २५१ पर भोजनप्रकरण संख्या ३।

पदार्थों का संग्रह हो सकता है। **आदयः** से **आदी (=अदरक)** की चटनी समझना तो आक्षेप्ता की बुद्धि की ही उपज हो सकती है। आक्षेप्ता ने **'हिन्दी का संस्कृत अनुवाद किया गया है'** ऐसा मिथ्या आग्रह करके ये उपर्युक्त तीन दोष दिये है जबकि वस्तुस्थिति यह है कि **संस्कृत का सर्वत्र भावप्रधान अनुवाद दिया गया है।** आक्षेप्ता या तो सर्वथा निर्बुद्धि है जो वह इतनी साधारण सी बात न समझ सका, अथवा मत्सरदोष से ग्रस्त होने से उसने समझते बूझते हुए भी अपना पाण्डित्य दर्शाने अथवा मूर्खों के मनस्तोष के लिए मिथ्या आक्षेप किये हैं।

४५. (आक्षेप) पृष्ठ १४ पं० १०[४७]—(गुड़ का क्या भाव है) इसकी संस्कृत **(गुडस्य को भावः)** लिखी है। वाह क्या उत्तम संस्कृत है। यदि मुझ से पूछें कि **'गुडस्य को भावः'** तो मैं कहूंगा कि **गुडत्वम्।**

समाधान—आक्षेप्ता ने यहां हिन्दी में क्रय विक्रय व्यवहार में प्रयुक्त **भाव** शब्द को सम्भव है शब्द की प्रवृत्ति का निमित्तरूप भाव **(यस्य सद्भावात् द्रव्ये तत्तच्छब्दप्रवृत्तिः, 'तस्य भावस्त्वतलौ'** अ० ५.१.११८ सूत्रस्थ भाव) समझा है। यदि कहा जाये कि हिन्दी में क्रय विक्रय में प्रयुक्त भाव को संस्कृत में **'भाव'** शब्द के रूप में रखना दोष है क्योंकि वह **भू सत्तायाम्** धातु से शब्दप्रवृत्तिनिमित्तसत्ता को व्यक्त करता है तो यह उनकी भूल है। क्रय विक्रय व्यवहार में हिन्दी में प्रयुक्त भाव शब्द भी इसी अर्थ में शुद्ध संस्कृत शब्द है। यह भाव शब्द **भू सत्तायाम्** धातु से निष्पन्न नहीं है। इसका मूल है चुरादिगण की **भू प्राप्तौ आत्मनेपदी** धातु। **भाव्यते=प्राप्यतेऽनेन पदार्थजातमिति भावः।** जिस हिसाब से कोई द्रव्य प्राप्त किया जाता है या प्राप्त किया जा सकता है वह भाव यहां अभिप्रेत है। यदि आक्षेप्ता को चुरादिगणस्थ **भू प्राप्तौ** धातु स्मरण होती तो यह आक्षेप ही नहीं करता। हमें तो प्रतीत होता है कि आक्षेप्ता केवल लघुकौमुदी तक ही व्याकरण पढ़ा था, क्योंकि लघुकौमुदी में चुरादिगण की **भू प्राप्तौ** धातु व्याख्यात ही नहीं। वहां केवल **चुर कथ गण** तीन का उल्लेख है। और सम्भवतः आक्षेप्ता बारबार **लघुकौमुदी** का नाम भी इसी लिये लेता है। यथा—आक्षेप ४२ में।

इसी प्रकार के मूलतः संस्कृत के अनेक ऐसे शब्द हैं जो वर्तमान

---

४७. इस संस्करण में पृष्ठ २५८ पर क्रयविक्रय प्रकरण संख्या ६।

में पारसी आदि भाषाओं के माने जाते हैं। यथा पवित्र-वाचक **पाक** शब्द तथा युद्ध पर्याय **जङ्ग** शब्द।

४६. (आक्षेप) पृष्ठ १४ पं० २[४८]—**आने** की संस्कृत **आना** लिखते हैं। वाह इसी प्रकार से **लोटे** की संस्कृत **लोण्टा** बना डालिये।

समाधान—संस्कृत भाषा का व्यवहार में लोप हो जाने के पीछे जो नाप तोल व सिक्के प्रचलित हुए उनके नामों को संस्कृत भाषा के **यदृच्छा** शब्दों के अन्तर्गत रूढ मानकर प्रयोग करना व्याकरण के अनुसार सर्वथा शुद्ध है। महाभाष्यकार ने कहा है—**चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः—जातिशब्दाः, गुणशब्दाः, क्रियाशब्दाः यदृच्छाशब्दाश्चतुर्थाः** (**ऋलृक्** सूत्र के भाष्य में)। इसके आगे यदृच्छा शब्दों के अनुकरणात्मक शब्दों को साधु शब्द मान कर सूत्र में लृकार का प्रयोजन बताया गया है।

इस प्रकार यदृच्छा शब्द के रूप में पूर्वकाल में भी अनेक अपभ्रंश (देशी विदेशी) भाषाओं के शब्द अपने अपने समय में संस्कृत में स्थान पा चुके हैं। अतः रुपये के सोलहवें अंश **आना** के लिये संस्कृत में भी **आना** शब्द को लेना शास्त्रीय नियमसम्मत है।

४७. (आक्षेप) पृष्ठ २५ पं० १९[४९]—(ऊर्ध्वश्वास चलने से) इसकी संस्कृत लिखते हैं कि **(ऊर्ध्वश्वासत्वात्)** अहा! हा!! हा!!! कोई कैसी भी चिन्ता में बैठा हो इस उल्था के सुनते ही हंस पड़ेगा। मैं अब क्या लिखूं मेरी लेखनी तो इस समय हास्य रस में डूब रही है। समझ जाइये "**किमज्ञातं सुबुद्धीनाम्**"।

समाधान—जैसे कि हम इस प्रकरण के आरम्भ में ही लिख चुके हैं कि ग्रन्थकार ने हिन्दी का उल्था=अनुवाद संस्कृत में नहीं किया अपितु संस्कृत वाक्य का भाव हिन्दी में बताया है।

अब पहले विचारिये कि **ऊर्ध्वश्वासत्वात्** प्रयोग ठीक है या अशुद्ध। **अद्याऽस्य मरणसमय आगतः** यह हेतुमत् है और **ऊर्ध्वश्वासत्वात्** यह हेतु है। हेतु हेतुमत् का संस्कृत भाषा में कोई प्रयोग नियम नहीं है। आप **ऊर्ध्वश्वासत्वात्** के आगे वाक्यपूर्त्यर्थ **ज्ञायते** क्रिया का अध्याहार करके पढ़िये, वाक्य सर्वथा निर्दोष प्रतीत होगा। **ऊर्ध्वश्वासत्वात् ज्ञायते अद्यस्य**

---

४८. इस संस्करण में पृष्ठ २५८ पर क्रयविक्रयप्रकरण की संख्या ७।

४९. इस संस्करण में पृष्ठ २७० पर ननन्दृभ्रातृ०प्रकरण की संख्या १७।

मरणसमय आगतः। जब वाक्य अध्याह्रियमाण क्रिया से शुद्ध है तब उसे अशुद्ध कहना आक्षेप्ता का अपनी मूर्खता का प्रदर्शन करना मात्र ही है।

जैसे संस्कृत में **ज्ञायते** क्रिया का अध्याहार आवश्यक है वैसे ही हिन्दी में भी **ऊपर को श्वास चलने से** इस वाक्य में ''**जाना जाता** है'' क्रिया का अध्याहार जानना चाहिये। यदि आक्षेप्ता का यहां 'संस्कृतपदान्तर्गत 'त्व' प्रत्ययपरक अनुवाद न होना दोषावह है' अभिप्राय हो तो उसे समझना चाहिये कि भाषा का पदशः अनुवाद नहीं है प्रत्युत भावानुवाद रूप है।

आक्षेप्ता का यदि आक्षेप **ऊर्ध्वश्वासत्वात्** में ''**त्व**'' प्रत्यय पर हो तो उसे जानना चाहिये कि ऊर्ध्व और श्वास का यहां कर्मधारय समास नहीं है बहुव्रीहि समास है—**ऊर्ध्वाः श्वासा यस्य स ऊर्ध्वश्वासः तस्य भावः ऊर्ध्वश्वासत्वम् तस्मात्।** इस प्रकार यह वाक्य सर्वथा निर्दोष बन जाता है।

४८. (आक्षेप) पृष्ठ ३४ पं० ६[५०]—**(जले पात्रे चक्षुर्निक्षिप्य विनाशितम्)** इस को पाठक गण शुद्ध कर लेवें।

समाधान—यहां आक्षेप्ता महाशय को क्या आक्षेप है यह उन्होंने स्पष्ट नहीं किया। यहां सम्भव है **चक्षुः** या **विनाशितम्** पद पर आक्षेप होगा। यदि **चक्षुः** पद पर आक्षेप हो तो यह व्यर्थ है। मूल पाठ **चञ्चुः** है जो ठीक है। यदि आक्षेप्ता ने **चक्षुः** जान बूझ कर अपपाठ नहीं बनाया तो उनका आक्षेप **विनाशितम्** पद पर होगा। उस अवस्था में वे समझते होंगे कि यहां **दूषितम्** पाठ होना चाहिये। परन्तु यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि विनाश शब्द का प्रयोग स्वस्वरूप की हानि में होता है। घट विनष्ट हो गया का अर्थ टूट गया अर्थात् घट घटरूप में नहीं रहा। इसी प्रकार पेयजल को कौवे की चोंच डुबोने से अपेय हो जाना भी पेय जल का विनाश होना ही है। यहां यद्यपि जल की स्वरूप हानि नहीं है पुनरपि उस के पेयत्वधर्म की हानि तो है ही। अतः यहां **विनाशितम्** पद का प्रयोग भी ठीक है।

मूल में '**पेयजले पात्रे चञ्चु०**' मुद्रणदोष है वहां '**पेयजले चञ्चु०**' या '**पेयजलपात्रे चञ्चु०**' पाठ होना चाहिये।

---

५०. इस संस्करण में पृष्ठ २७८ ग्रामस्थपक्षिप्रकरण की संख्या ८।

यहां तक आक्षेप्ता ने ४८ आक्षेप करके जिन हेतुओं से किन्हीं योगों का साधुत्व विदित होता है उन को भी अप्रमाण कोटि में रखने का प्रयास किया है। यह प्रयास भी उनके अवैयाकरणत्व का द्योतक है।

इस प्रकार हमने इस प्रकरण में ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित संस्कृतवाक्यप्रबोध पर किये गये आक्षेपों में से उन तीन आक्षेपों को, जिनका उत्तर ऋषिदयानन्द ने स्वयं लिख या लिखवा कर **एक पण्डित** के नाम से प्रकाशित किया था, छोड़ कर उन सभी आक्षेपों का समाधान व्याकरणशास्त्र एवं शिष्ट प्रयोग के आधार पर करने का प्रयत्न किया है जो वास्तव में साधु या शुद्ध प्रयोग थे। जो लिपिपरक एवं मुद्रण दोष से दूषित थे उन को हमने उसी रूप में शुद्ध मान लिया है जिस रूप में अगले संस्करण में वे शुद्ध किये गये हैं।

तृतीय परिशिष्ट

आर्यदर्पण पत्र मई सन् १८८० ई० के पृष्ठ ११३-११९ तक अबोधनिवारण के सम्बन्ध में लिखा गया लेख

अबोधनिवारण[५१]

घटं भित्त्वा पटं छित्त्वा कृत्वा रासभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥

यह पुस्तक ''ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा'' के पण्डितों की ओर से स्वामी जी के 'संस्कृतवाक्यप्रबोध'' की अशुद्धियां प्रकाश करने हेतु बनाया गया है।

प्रथम हम इस सभा के कर्त्तव्य के विषय में ''भारतमित्र'' पत्र से निम्न लेख संग्रह करते हैं। इस सभा के एक हितकारी लिखते हैं कि—

''इस सभा के कई बड़े दोष देख पड़े हैं कि जो उसके गुणों को नष्ट कर देते हैं। पहिले मुझे आशा थी कि ये दोष सुधर जायेंगे पर अब देखता हूँ कि स्वाभाविक हो गये हैं।

१. इस सभा के मैनेजर इस प्रकार हैं कि ९ वा १० महीने हुए समाचार पत्रों में विज्ञात कर चुके हैं कि ''पीयूष शीकर प्रकाश होगा'' पर न जाने यह पत्र कब निकलेगा?

२. सभा का नियम है कि ''जब कोई बोल रहा हो तो दूसरा न बोले'' पर इस पर कोई भी दृष्टि नहीं देता प्रायः हुल्लड़ मच जाता है।

३. अब हाल में मेरे पास ''वाक्यपञ्चाशिका'' और ''खगोल दर्पण'' दो पुस्तक आये हैं।

महाशय! मैं इन पुस्तकों की समालोचना क्या करूं ग्रह को नक्षत्र और नक्षत्र को ग्रह लिखा है, बस इतने ही में समझ जाइए।

४. गत शनिवार की सभा में पण्डित युगलकिशोर जी ने ऐसी असभ्य और अनुचित बातें कहीं कि मैं उसे यहां नहीं लिख सकता, इस सब पर जब बाबू नारायणसिंह आदि ने उनको रोका तो लड़ने को तैयार हुए। इस पर बड़ा हुल्लड़ हुआ और मारपीट की नौबत भी आ गई थी, ईश्वर ने

---

५१. यह लेख श्री पं० भवानीलाल जी भारतीय अजमेर के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। युधिष्ठिर मीमांसक

कृपा की।

ऊपर जिस बात को असभ्य लिखा है वह इस प्रकार है कि जब स्वामी जी चले गये तो पण्डित युगलकिशोर ने विचारा होगा कि अब कोई विचित्र मिथ्या बात लोगों के मन प्रसन्न करने और अपनी बड़ाई के लिए अवश्य उड़ानी चाहिए। प्रायः उन्होंने यह विज्ञापन भाषा और अंगरेजी में छपवाकर प्रकाशित किया—

''अभाग्य वश से मूर्ख जन की प्रसिद्धि के अनुसार हम लोगों ने दयानन्द सरस्वती के पास आके वेदार्थ जानने की इच्छा की थी परन्तु जब स्वामीजी के मुख से नाना प्रकार की वेद विरुद्ध शिष्टाचार के बाहर बात सुन पड़ी तब तो हमने काशीस्थ ब्रह्मामृत-वर्षिणी सभा के सभ्य विद्वानों से अपने सन्देह दूर करने की इच्छा की और जब हम लोग अपनी बुद्ध्यनुसार समस्त शंका से रहित भये तब उक्त सभा के मेम्बर पंडित युगलकिशोर पाठक जी (जो कि हमारे वैदिक गुरु हैं) के उपदेश से निजचित्तग्लानिवृत्तिपूर्वक कुसंगजनित पापनिवृत्त्यर्थ मणिकर्णिका तीर्थ पर यथाविधि प्रायश्चित्त और श्री विश्वेश्वरादि देवों का दर्शन करके अपने सन्मति के अनुसार वेदाभ्यास की इच्छा प्रकट करते हैं। और यह प्रतिज्ञा करते हैं के हम लोग निज गुरु निर्दिष्ट मार्ग से दूर न होंगे।

प्रायश्चित्त करने वालों का नाम—

सीताराम, बबुवानन्द पाण्डे, कृष्णारात शुक्ल, रामप्रसाद दुबे, इस पत्र के प्रकाशकर्त्ता वेदशास्त्र सम्पन्न

पण्डित युगलकिशोर पाठक॥''

जब यह विज्ञापन सभा में पढ़ा गया तब बहुत से लोगों की इच्छा हुई कि जिन चार पुरुषों के इसमें नाम हैं उनके दर्शन भी करने चाहिएं। इस पर बाबू नारायणसिंह (सभासद् आर्यसमाज) ने पंडित युगलकिशोर से पूछा कि वे ४ पुरुष कहां हैं? पंडित जी ने (क्रोध में लाल होकर) उत्तर दिया कि उन को हम अपनी अगली सभा में लेते आवेंगे।

पण्डित जी ने तो इस विज्ञापन में झूठमूठ इन ४ पुरुषों के नाम मनमाने लिखकर एक उपहास का काम किया था, इन चारों को लावें कहां से!

अब तो पण्डित जी घबड़ाए और लगे इधर उधर लड़कों को सिखलाने कि तुम हमारे साथ चलकर ऐसा ऐसा कह देना, परन्तु ऐसे बुरे काम में

कौन पण्डित जी की सुनता है! प्रायश्चित्त का नाम ही सुनकर श्वासा बन्द होते हैं, क्योंकि इससे अत्यन्त निन्दा और बुराई विदित होती है।

परन्तु यूं तू करके पण्डित जी एक लड़के को ले ही गये, जब उसका नाम पूछा तो उसने रामकृष्ण दुबे बता दिया (पण्डित जी ने सिखाया होगा कि रामप्रसाद दुबे कहना, परन्तु बनावटी नाम कब तक याद रह सकता है वह भूल गया) फिर पूछा गया कि तुम स्वामी जी के पास गए थे? उसने कहा कि कभी नहीं। (!!!)

जब यह बात हुई तब तो पण्डित जी का यह गुप्त व्यवहार प्रकाशित हो गया, फिर लोगों ने कहा कि आपने यह मिथ्या विज्ञापन क्यों मुद्रित कराया? इस पर पण्डित जी क्रोध में लाल होकर लगे गड़बड़ हांकने, तब उनके मुखारविन्द से यह बात निकली कि ''जिसने दयानन्द का मुख देखा वह हिन्दू के बीज का नहीं'' इस बात को कहने पर बाबू नारायणसिंह ने कहा कि सं० १९२६ के शास्त्रार्थ में श्रीयुत महाराजा काशी नरेश और स्वामी विशुद्धानन्द और बालशास्त्री आदि हजारों हिन्दू थे, तो आपने इन सबको दुर्वचन कहा! इस पर पण्डित जी को सभा से निकाल दिया, तब तो उन्होंने बड़ा हुल्लड़ मचाया, मारपीट की नौबत आ गई थी, ईश्वर ने कृपा कर दी। अब पाठक विचारें कि यह कैसी लपोड़संखी सभा है! धन्य है इस सभा की!! और धन्य है इसके पण्डितों की!!!

अब इस पुस्तक के विषय में देखिए—इसके टाइटिल पेज पर लिखा है कि ''काशी के पण्डित अम्बिकादत्त व्यास और बाबूराम वर्मा ने श्रीयुत*[५२] की आज्ञा अनुसार प्रकाशित किया॥''

यहां पहिले हम यह ही पूछते हैं कि पुस्तक के बनाने वाले का नाम सत्य सत्य क्यों नहीं लिखा गया? (कि जो पं० राममिश्र शास्त्री हैं) दूसरे श्रीयुत पं० के आगे शून्य जगह क्यों छोड़ी गई? क्या लोगों को धोखा देने के लिए! देखिए हमने जो दो पुस्तक मोल लिये तो उन पर ''चतुर्भुज जी'' लिखा पाया और जो हमने और लोगों के पास इन्हीं को देखा तो और ही नाम लिखा पाया,[५३] क्या प्रकाश करने वालों का मुख्य तात्पर्य

---

५२. यहां शून्य (खाली) जगह एक नाम लिखने के लिए छोड़ दी गई है।

५३. हमारे पास जो पुस्तक अबोधनिवारण की है उस पर हाथ से ''सूर्यनारायण'' लिखा है। युधिष्ठिर मीमांसक

लोगों को धोखा देकर टट्टी की आड़ में शिकार करने का है ? फिर देखिये इसकी भूमिका में रामकृष्ण ने लिखा है कि यह पुस्तक हमारे मित्र पं० अम्बिकादत्त व्यास ने बनाई और आगे चलके पुस्तक के पहिले पेज पर लिखा है कि ''**रामकृष्णवर्मांविरचितम्**'' अब पाठकगण विचारें कि इन मिथ्या बातों और पूर्वापर विरोध से क्या विदित होता है!

अब यहां एक और विचित्र बात सुनिये कि जब यह पुस्तक बनाया गया तब बहुत से पण्डितों के पास हस्ताक्षर के हेतु ले गये, परन्तु किसी बड़े पण्डित ने अपने हस्ताक्षर न किये, तब पण्डित चतुर्भुज जी से भी कहा गया (यहां तो मानों मुख खोले ही बैठे थे) उन्होंने कह दिया हां हमारे नाम से छपवा दो, फिर न जाने किस कारण उनका नाम न छापा गया, तब तो पण्डित जी बड़े क्रोधित हुए।

अब हमने सुना है आजकल यहां के पण्डित लोग एक पुस्तक इस ''**अबोधनिवारण**'' **के खण्डन में** बना रहे हैं जिसमें स्वामीजी कृत ''**संस्कृतवाक्यप्रबोध**'' का मण्डन और ''**अबोधनिवारण**'' का खण्डन होगा।

फिर इसी भूमिका में स्वामीजी को लिखा है कि ''यदि कुछ विद्या रखते हैं तो इसका प्रत्युत्तर देकर लेख को शुद्ध ठहराइए, अब आपको अधिक क्या समझावें।''

हम नहीं जानते कि ये लोग सोच समझकर क्यों नहीं लिखते! महाशय!! आपको लिखने का तो बोध है ही नहीं, पहिले लिखना तो सीखिये, तब ही मुख फैलाइये।

क्या आपने स्वामीजी का विज्ञापन नहीं देखा है? क्या आपने भ्रमोच्छेदन को विचारकर नहीं देखा है? जो ऐसा लिखते हो। स्वामीजी ने अपने विज्ञापन तथा भ्रमोच्छेदन में स्पष्ट लिख दिया है कि काशी में आजकल स्वामी विशुद्धानन्द और पण्डित बालशास्त्री ये दो ही प्रसिद्ध हैं, जो ये चाहें तो भले ही शास्त्रार्थ मन खोलकर पत्र द्वारा अथवा सन्मुख समझ कर के करें, नहीं तो काशी में और किसी तीसरे के लेख का उत्तर हम कदाचित् न देंगे।[५४]

५४. जब यहां के असभ्य लोग अण्ड बण्ड विज्ञापन स्वामी जी के विषय में लगाने लगे तब अन्त में स्वामी जी को इन लोगों के मुख बन्द करने की यह प्रतिज्ञा अवश्य करनी पड़ी।

इसलिए जो आप स्वामीजी से अपने पुस्तक का उत्तर ही लेना चाहते थे, तो क्या इन दोनों में से किसी एक के हस्ताक्षर न करवा लिये होते?

हमने सुना है कि इस बात की चर्चा भी सभा में हुई थी तिस पर पण्डित राममिश्र जी ने कहा कि क्या ये दोनों हम से भी बढ़ गये, हमने बालशास्त्री की सैकड़ों अशुद्धियाँ निकाली हैं।

अब कहां है स्वामी विशुद्धानन्द जी को जगद्गुरु लिखने वाले? यहां तो वे जगत् क्या केवल एक काशी के भी गुरु न निकले।

और आपने जो लिखा कि स्वामीजी को कहां तक समझावें—सो ठीक है, स्वामी जी जैसे विद्वान् आप की मिथ्या स्वार्थिक और अनुचित बातों को कैसे समझ सकते हैं।

क्योंकि विद्वान् विद्वान् ही की बातों को विचार कर समझा करते हैं। फिर आपने लिखा कि ''पं० अम्बिकादत्त को धन्यवाद दें कि उन्होंने स्वामीजी के पुस्तक का यह शुद्धि पत्र बनाया था।''

वाह! वाह!! यह एक ही रही, भला जो आप डूब रहा है वह दूसरे को क्या बचा सकता है!!! फिर अन्त में लिखा कि ''स्वामीजी पं० राममिश्र जी के साथ शास्त्रार्थ करें।''

हम कहते हैं कि स्वामी जी तो रहे अलग, पहिले आपके पण्डित जी स्वामी जी के विद्यार्थियों से ही शास्त्रार्थ कर लेवें।

सबसे पहले हमारे ही इस प्रश्न का उत्तर दें कि यदि पाषाणादि मूर्तिपूजन को आप लोग सत्य मानते हैं तो इसका प्रमाण वेद संहिताओं में कहीं से दीजिए?

बताइये कि वेद के कौन कौन से मन्त्रों में ये नीचे लिखी तीन वार्त्ता, जो आप लोग करते हैं लिखी हैं?

१. पूजा और उपासना के लिए काठ, पत्थर, पीतल आदि की मूर्तियां बनाई जावें।

२. उन मूर्तियों में ईश्वर की स्थापना की जावे।

३. उन मूर्तियों पर चन्दन, पानी, दूध, बताशा, भंग, धतूरा, बकरी, बकरा, पूरी, कचौरी आदि चढ़ाये जावें। मन्दिरों में जाकर घण्टा, झांझ, गाल कर्ताल बजाये जावें और पुजारियों को माल दिये जावें।

इनमें केवल वेद संहिताओं ही के प्रमाण माने जायेंगे।

अब क्या तो आप या आपके पण्डितजी हमारा उत्तर दें, नहीं तो लिखें कि यह मिथ्या पाखण्ड ही है? स्वामी जी से तो जैसा शास्त्रार्थ करेंगे विदित है। शोक है कि आपको शास्त्रार्थ का नाम लेते भी लज्जा नहीं आती। स्वामी जी यहां ५॥ साढ़े पांच मास रहे—शास्त्रार्थ का विज्ञापन दिये, उस समय कोई भी उद्यत न हुआ। क्या उस समय आप और आप के पण्डित जी गहरी नींद में सन्नाटे भर रहे थे? किसी ने शास्त्रार्थ का नाम भी न लिया, अब आपके व्यर्थ गाल बजाने से क्या होता है।

हमारे इस लेख से आप यह न समझें कि आप के पुस्तक का खण्डन न किया जावेगा। नहीं, आप के पुस्तक का खण्डन लिखा जा रहा है।[५५]

हम स्वीकार करते हैं कि इस पुस्तक में नवीन यन्त्रालय होने, और स्वामी जी के उसी समय पधारने, और पूर्ण विद्वान् शोधक के न होने से बहुधा अशुद्धियां हो गई हैं, परन्तु आपने जो व्यर्थ एक बात का बतकड़ा बनाकर पक्षपात की सामग्री से एक झूठा मीनार बनाया है, इसको देखिये हम कैसे सत्य के झोंके से उड़ाकर तितर बितर कर डालते हैं। यहां भी दो तीन बातें आप को खण्डन कर के दिखलाते हैं[५६]—

[ये खण्डनात्मक बातें इसी ग्रन्थ के प्रथम परिशिष्ट में प्रकाशित की जा चुकी है।]

---

५५. यह खण्डन क्यों नहीं छपा, इसका कारण हमें ज्ञात नहीं। सम्भव है ऋषि दयानन्द ने व्यर्थ समझ कर मना कर दिया हो, पुनरपि खण्डन अवश्य प्रकाशित होना चाहिए था। अन्यथा जनता में भ्रम फैलता है जैसा कि मुन्नालाल मिश्र के २१.१०.१८८२ के पत्र से ज्ञात होता है।

ऋषि दयानन्द कृत **भागवत खण्डन** का जो खण्डन उन्हीं के समय में देहली के एक विद्वान् ने प्रकाशित किया था, उसका भी उत्तर आज तक किसी ने नहीं दिया। —युधिष्ठिर मीमांसक

५६. इस पुस्तक पर कविवचनसुधा १६ अगस्त में आपे से बाहर होकर अंड बंड लिखा गया है, उसका उत्तर हम बकवाद समझकर कुछ नहीं देते। शोक है ऐसे एडीटर ही एडीटरी पर बट्टा लगाते हैं क्या ये एक्ट ९ को भूल गये। इस मटिया फूस पत्र में एक भी बात उत्तर देने योग्य नहीं है।